MAHIN 1.4

CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION (CDOE)
UNIVERSITY OF MUMBAI

एम. ए. हिन्दी

सत्र - I

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० नुसार संशोधित पाठ्यक्रम

हिन्दी नाटक

(HINDI DRAMA)

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्रा. रवींद्र कुलकर्णी
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. डॉ. अजय भामरे
प्र-कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. शिवाजी सरगर
संचालक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रकल्प समन्वयक : **अनिल बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, कला एवं मानव्यविद्या शाखा प्रमुख,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र (सी. डी. ओ. ई),
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई - ४०००९८.

अभ्यास समन्वयक एवं लेखक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र
(सी. डी. ओ. ई), मुंबई विश्वविद्यालय , मुंबई - ४०००९८.

संपादक एवं लेखक : **प्रा. प्रमोद पब्बर यादव**
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र
(सी. डी. ओ. ई), मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई - ४०००९८.

लेखक : **डॉ. अनिल गोविंद चौधरी**
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र
(सी. डी. ओ. ई), मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई - ४०००९८.

: **डॉ. सुरिंदर कौर**
सहायक प्राध्यापक, गुरु नानक कॉलेज (स्वायत्त) आर्ट साइंस एंड कॉमर्स,
गुरु तेग बहादुर नगर, सायन (पूर्व), मुंबई ४०००३७.

ऑक्टोबर २०२४, प्रथम मुद्रण, ISBN No. 978-93-6728-916-7

प्रकाशक
संचालक
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र (सी. डी. ओ. ई), मुंबई विद्यापीठ, मुंबई - ४०००९८.

अक्षरजुळणी
मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
सांताक्रुझ, मुंबई

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	नाट्य और नाटक : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप	१
२.	नाटक और रंगमंच, रंग विमर्श	१२
३.	नाटक के तत्व, विशेषताएँ	३०
४.	प्रयोगधर्मी नाटक का स्वरूप	४९
५.	'आधे अधूरे' नाटक का नाटक के तत्वों के आधार पर विवेचन - कथानक व, पात्र और चरित्र चित्रण	६०
६.	'आधे अधूरे' नाटक का नाटक के तत्वों के आधार पर विवेचन - नाटक का उद्देश्य, भाषा शैली,देशकाल और वातावरण संवाद योजना	७८
७.	'आधे - अधूरे' नाटक : विविध संदर्भ	९२

*****

NAME OF PROGRAM	M.A.(C.B.C.S).
NAME OF THE COURSE	M.A.(Hindi)
SEMESTER	I
PAPER NAME	Hindi Drama (हिंदी नाटक)
PAPER NO.	4
COURSE CODE	33504
LACTURE	30
INTERNAL ASSESSMENT	50
EXTERNAL ASSESSMENT	50
CREDITS & MARKS	2 & 100

Course outcomes:

क) कला और साहित्य की प्राचीनतम विधा से परिचय प्राप्त करना.

ख) हिंदी नाटकों के विकास और रंगमंच की जानकारी प्राप्त करना.

ग) नाटक का तात्त्विक परिचय प्राप्त करना.

क) नाटक और रंगमंच के अंत:संबंध का ज्ञान प्राप्त करना.

MODULE I : **(2 CREDITS)**

Unit 1 :

क) नाट्य और नाटक : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप

ख) नाटक और रंगमंच, रंग विमर्श

ग) नाटक के तत्त्व, विशेषताएँ

Unit 2 :

क) प्रयोगधर्मी नाटक का स्वरूप

ख) आधे-अधूरे (नाटक) - मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

ग) आधे अधूरे - विविध संदर्भ

References :

1. हिंदी नाटक के पांच दशक – कुसुम खेमानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2015
2. हिंदी नाटक कल और आज – केदार सिंह, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 2005
3. आधुनिक हिंदी नाटक – गिरीश रस्तोगी, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, 1968
4. हिंदी नाटक और रंगमंच : नई दिशाएं, नए प्रश्न, – गिरीश रस्तोगी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श – जयदेव तनेजा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2015
6. हिंदी नाटककार – जयनाथ नलिन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1961
7. नाट्य निबंध – दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972
8. हिंदी नाटक बदलते आयाम – नरेंद्रनाथ त्रिपाठी, विक्रम प्रकाशन, दिल्ली, 1987
9. आधुनिक हिंदी नाटककारों के नाटक सिद्धांत – निर्मला हेमंत, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली।
10. रंगदर्शन – नेमीचंद्र जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1982
11. हिंदी नाटक – बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाश, दिल्ली, 2008
12. आधुनिक हिंदी नाटक – बनवीर प्रसाद शर्मा, अनग प्रकाशन, दिल्ली, 2001
13. नाटक : विवेचना और दृष्टि – डॉ. मोहसिन ख़ान – अमन प्रकाशन, कानपुर 2021
14. भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच – रामसागर त्रिपाठी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1971

१

नाट्य और नाटक: अर्थ, परिभाषा, स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ नाटक का अर्थ एवं परिभाषा

१.३ नाटक का स्वरूप

- १.३.१ प्रसाद पूर्व
- १.३.२ द्विवेदी कालीन
- १.३.३ प्रसाद कालीन
- १.३.४ प्रसादोत्तर कालीन
- १.३.५ समकालीन

१.४ स्थानांतर स्वरूप

१.५ प्रकारांतर स्वरूप

१.६ सारांश

१.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

१.८ टिप्पणियां

१.० इकाई का उद्देश्य

- विद्यार्थियों में नाटक विधा के अर्थ व परिभाषा की जानकारी।
- विद्यार्थियों में नाटक के स्वरूप की जानकारी
- विद्यार्थियों में नाटक विधायक के विविध आयामों की जानकारी।

१.१ प्रस्तावना

साहित्य मनुष्य की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन है। यही कारण है कि वरिष्ठ साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने साहित्य को ही मनुष्य की सर्वोत्तम कृति माना है। साहित्य मनुष्य के मन-मस्तिष्क एवं ह्रदय से सृजित होता है। साहित्यकार ही साहित्य का सृजन-कर्ता है परंतु साहित्यकार नश्वर है और साहित्य अनश्वर। समय बीतने पर साहित्यकार संसार से विदा हो जाता है और तब वही साहित्य जिसका अस्तित्व साहित्यकार द्वारा बना था आज उसी साहित्यकार का अमर अस्तित्व बन जाता है जो युगों तक उस सृजनकर्ता को पहचान दिलाता है।

जिस प्रकार अनेक नदियाँ अपनी जलराशि अंतत: सागर को समर्पित कर उसे अपार बना देती हैं उसी प्रकार अनेकानेक साहित्य विधाएँ एकत्रित हो साहित्यिक सागर को परिपूर्णता देती है। हवा के झकोरों की भाँति सांसारिक परिवर्तन इस सागर में नई लहरें उठाते रहते हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और अन्य विधाओं की नित्य नई लहरें इस साहित्य के सागर में उठती ही रहती हैं जिसके कारण यह सागर सदैव गर्जायमान रहता है। नाटक इसी प्रकार एक साहित्यिक विधा है जो एक विश्वविख्यात विधा है।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही साहित्यों में प्राचीन काल से नाट्य साहित्य की रचना होती रही है और उन पर नाटक खेले भी जाते रहे हैं। प्राचीन और मध्यकाल तक नाटक प्रायः काव्य रूप में ही होते थे। आधुनिक काल में नाटक पूर्णतः गद्य में रचे जाने लगे। आज भी नाटक सफलता से लिखे, खेले और देखे जाते हैं।

१.२ नाटक का अर्थ एवं परिभाषा

नाटक क्या है?

"नाटक कथा साहित्य को संवाद एवं अभिनय द्वारा रंगमंच की सहायता से प्रस्तुत की जाने वाली विधा है "।

अर्थात जहाँ कथा साहित्य को कहानी, उपन्यास आदि माध्यमों से लिखित अथवा मौखिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है वहीं, नाटक इससे एक चरण आगे जा कर इसी कथा साहित्य को संवाद एवं अभिनय के साथ दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है जिससे लेखक अपनी अभिव्यक्ति सहृदय तक अधिक स्पष्ट रूप से पँहुचाने में सफल होता है।

वास्तव में जब कोई रचनाकार किसी कथा का सृजन अथवा अनुसरण करता है तो अपनी कथा के पात्रों, वेशभूषा, स्थल आदि के विषय में उसकी एक परिकल्पना होती है। वह एक प्रकार का शब्द चित्र अपनी आँखों के सामने लाकर अपनी कथा को पाठक तक पहुँचाने का प्रयास करता है। परंतु जब पाठक उसी कथा को पढ़ता है तो वह उन्हीं पात्रों , वेशभूषाओ, स्थल आदि का चित्रण अपनी रुचि और समझ के अनुसार करता है। ऐसा एक ही रचना को पढ़ने वाले प्रत्येक पाठक के साथ होता है। उदाहरणतः- प्रेमचंद के कालजयी उपन्यास 'गोदान' के दो पात्र होरी और धनिया की ही बात करें। प्रेमचंद की दृष्टि में निश्चित ही उन दोनों के संदर्भ में कोई चेहरा, कोई वस्तु शैली, बोल-चाल का कोई विशेष ढंग रहा होगा, जिसे उन्होंने अपने शब्दों द्वारा उपन्यास में उकेरा। इसी संबंध में साहित्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष को समझने हेतु किए गए एक रोचक सर्वे में बीस पाठकों से होरी और धनिया के चेहरे और वेशभूषा का उनके अनुसार चित्रण पूछा गया है। सभी ने भारतीय ग्रामीण जोड़े का चित्रण तो किया परंतु उनके चेहरे और बताए गए कपड़ों में बहुत अंतर था। अतः यह बात स्पष्ट है कि कथा साहित्य में लेखक शब्द चित्र तो प्रस्तुत करता है परंतु यह निश्चित नहीं है कि पाठक या श्रोता भी वही देखे।

"नाटक, कथा साहित्य के अमूर्त तत्वों को मूर्तिमान कर दर्शक की सोच पर रचनाकार की सोच को आरोपित करता है"

अब यदि गोदान पर कोई नाटक खेला जाता है तो निर्देशक द्वारा निश्चित इन्हीं दो पात्रों के चेहरे और वेशभूषा सभी दर्शकों को एक समान ही विदित होगी। हिन्दी फिल्म के पितामह 'दादा साहेब फाळके' जी ने सिनेमा को इन मराठी शब्दों में व्याख्यायित किया था "पड़द्या वरचा नाटक" अर्थात परदे पर प्रस्तुत नाटक। १९६३ में बनी फिल्म गोदान ने राजकुमार साहब और कामिनी कौशल जी के माध्यम से होरी और धनिया को सफलता से मूर्तिमान कर दिया। नाटक अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण आज तक विश्व में साहित्य की लोकप्रिय विधा बना हुआ है और हिंदी साहित्य को भी अपनी इस धरोहर पर गर्व है।

नाट्य साहित्य और नाटक:

नाट्य साहित्य और नाटक को प्रायः पाठक एक ही समझ लेते हैं परंतु साहित्य के किसी विद्यार्थी के लिए यह भ्रांति हानिकारक हो सकती है। अतः इनका सूक्ष्म भेद जानना आवश्यक है।

"किसी भी कथा साहित्य को संवाद शैली एवं कोष्ठक निर्देशों के साथ लिखना नाट्य साहित्य कहलाता है"

"नाट्य साहित्य के आधार पर अभिनेताओं के अभिनय द्वारा रंगमंचीय प्रस्तुतिकरण नाटक कहलाता है "

भारत और पाश्चात्य जगत दोनों में ही प्रचुर मात्रा में नाट्य साहित्य उपलब्ध है साथ ही नाटकों के खेले जाने का चलन भी प्राचीन काल से अब तक यथावत् चल रहा है।

हिंदी में नाट्य साहित्य का विकास निश्चित ही आधुनिक काल से हुआ है। इससे पूर्व संस्कृत नाट्य साहित्य प्राचीन काल से अति समृद्ध एवं उत्कृष्ट रहा है। हिंदी साहित्य के आदि काल एवं मध्य काल के नाटकों एवं नाट्य साहित्य का बहुत विकास नही हुआ। यद्यपि लोक कला के रूप में नाटकों का पृथक रूप से प्रस्तुतिकरण होता था जैसे रामलीला, पंडवानी आदि। परंतु नाट्य साहित्य का शुद्ध रूप में उदय १८५० के पश्चात ही माना जाता है। प्रायः सभी विद्वान इस तथ्य पर एकमत हैं कि हिंदी का पहला नाटक गिरधरलाल द्वारा लिखित, १८५७ में प्रकाशित नाटक 'नहुष' है। इस इकाई में विशेष रूप से हिंदी नाटकों के उद्भव और विकास को व्याख्यायित नहीं किया गया है, परंतु बिना परिपेक्ष्य के किसी भी वर्तमान तथ्य का सही संदर्भ नही समझा जा सकता।

इसी प्रकार हिंदी नाटक, नाट्य साहित्य एवं रंगमंच में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। अतः अगले भाग में हिंदी नाटक के स्वरूप के साथ ही संक्षेप में हिंदी नाटक की डेढ़ शताब्दी की विकास यात्रा का वर्णन भी प्रस्तुत है।

१.३ नाटक का स्वरूप

नाट्य साहित्य का स्वरूप वह लिखित विधा है जहाँ संवादों द्वारा कथा को प्रस्तुत किया जाता है, वहीं इसी साहित्य को अभिनय के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत करना नाटक है। दोनों के स्वरूपों में कालांतर में परिवर्तन आता गया है।

नाटक का स्वरूप नाटक के स्वरूप को लेकर विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। अतः सभी बातों को ध्यान में रखकर नाटक के स्वरूपों को यहाँ तीन भागों में बाँटा जा सकता है

नाटक का स्वरूप

- कालांतर स्वरूप (इसके अंतर्गत हिंदी नाटकों के विभिन्न कालों के स्वरूप का विवरण है)
- स्थानांतर स्वरूप (इसके अंतर्गत हिंदी नाटकों के विभिन्न स्थानों के स्वरूप का विवरण है)
- प्रकारांतर स्वरूप (इसके अंतर्गत हिंदी नाटकों के विभिन्न प्रकारों का विवरण है)

कालांतर स्वरूप:

प्राचीन काल में संस्कृत के नाटकों का पूर्णतः सफल प्रदर्शन होता रहा है। समय के साथ भारतीय नाट्य साहित्य की भाषा और विषय दोनों में ही परिवर्तन आया। इनके प्रस्तुतिकरण को लेकर भी अनेक बदलाव आए। कालिदास और उनके काल के नाटकों के राजकीय अनुदान की सहायता से अति समृद्ध प्रदर्शन हुए। मध्य काल तक आते-आते नाट्य साहित्य की रचना घटती गई साथ ही राज्याश्रय में खेले जाने वाले नाटक भी कम हो गए। मध्य काल में दरबारी काव्य को अधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ। मध्यकाल में नाटक, लोक नाट्य के रूप में अधिक प्रचलित हुए। परंतु इन कालों में जहाँ हिंदी साहित्य अपने विकास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव पर था, वहीं देश धीरे-धीरे विदेशी आक्रांताओं द्वारा पददलित हुआ और फिर दासता की श्रृंखला में बंध गया। शक, हूण, लोधी, गुलाम आदि अनेकों ने न केवल भारत पर आक्रमण कर इसे लुटा वरन् हमारी संस्कृति और सभ्यता का भी ह्रास किया।इसके बाद भारत- मुगल, पुर्तगाली, फ्रैंच और फिर अंग्रेजों का उपनिवेश बना। इनके सीधे हमलों ने भारतीय अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था एवं साहित्यिक सृजन सभी को प्रभावित किया।दासता की श्रृंखलाओं को तोड़ने हेतु समय-समय पर सशस्त्र विरोध हुए। भारतीय इतिहास के यह पन्ने अगणित राष्ट्रभक्तों के अमर बलिदान की गाथाओं से भरे हुए हैं। १८५० तक आते-आते एक ओर भारतीय इतिहास ने हुंकार भरी तो दूसरी ओर साहित्य में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आए। अब हिंदी साहित्य में गद्य काल आरंभ हुआ। अनेक गद्य विधाओं ने जन्म लिया संस्कृत का नाट्य साहित्य अब नई करवट के साथ हिंदी नाटकों के रूप में जाग उठा।

हिंदी नाटकों में सबसे अग्रणी स्थान जयशंकर प्रसाद जी का आता है। मोटे तौर पर हिंदी नाटकों को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं।

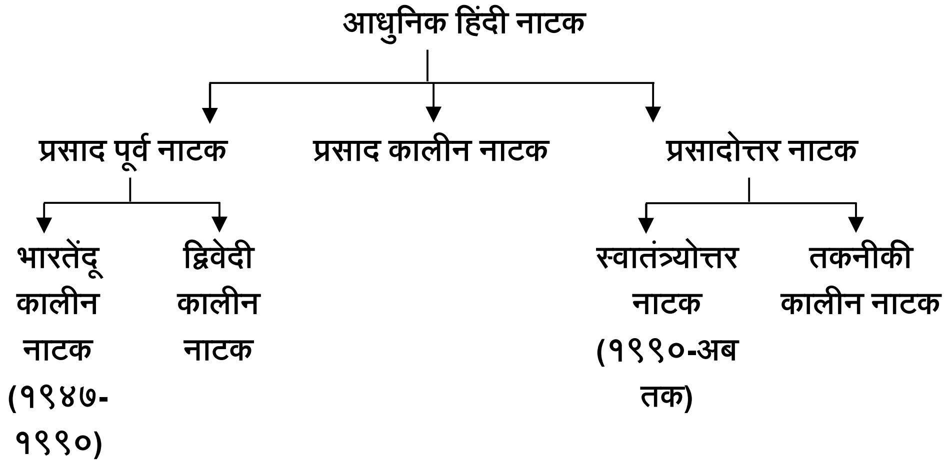

१.३.१ प्रसाद पूर्व:

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि १८५० के आस पास हिंदी में छुट पुट नाट्य साहित्य आरंभ हो गया था। गिरधरदास का नाटक 'नहुष' हिंदी का पहला नाटक कहलाया।वैसे सभी विद्वान भारतेंदु हरिश्चंद्र को ही हिंदी का पहला नाटककार मानते हैं। उनके नाटक ' विद्यासुंदर' (१९६८) को उनका पहला नाटक माना गया है।

इस काल में बहुत से नाटकों की रचना हुई। इनमें से काफी नाटक मौलिक न होकर अन्य भाषाओं से अनुदित थे। भारतेंदु के मौलिक नाटकों की सूची में १८७३ का "वैदिक हिंसा हिंसा न भवति",१८७५ "प्रेमयोगिनी",१८७६ का विषस्य विषमौषछम:,१८७६ का ही "चन्द्रावली, १८८० का "भारत दुर्दशा", १८८१ का नीलदेवी और अंधेर नगरी, १८८४ का "सती प्रताप" आदि इसके अतिरिक्त उनके कुछ अनुदित नाटक भी इतिहास में मिलते हैं, जिनमें से "विद्यासुंदर", "रत्नावली", "पाखंड विडंबन", "धनंजय विजय", "सत्य हरिश्चंद्र", "कर्पूर मंजरी", "भारत जननी", "मुद्राराक्षस", और "दुर्लभ बंधु" आते हैं। इसी काल में भारतेंदु के अतिरिक्त लाला श्रीनिवास का "रणधीर प्रेममोहिनी", किशोरी लाल गोस्वामी का "मयंक मंजरी", श्रीनिवासदास का "संयोगिता स्वयंवर", काशीनाथ खत्री का "सिंधुदेश की राजकुमारी", राधाकृष्णदास का "महारानी पद्मावती" भी इसी काल में लिखे गए। बाबू गोपालराम गहमरी और बालकृष्ण भट्ट ने कुछ प्रहसन लिखे थे।

भारतेंदु कालीन नाट्य साहित्य का विषय किसी हद तक ललित निबंधों की भांति विहंगम था। इनमें एक ओर प्रेमाख्यान, शृंगार प्रधान रचनाएं और हास्य जैसे कोमल भाव थे वहीं वीर, रौद्र और वीभत्स रसों को प्रस्तुत करती कृतियाँ भी थीं परंतु सबसे महत्वपूर्ण थे उस काल के राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना को प्रस्तुत करने वाले नाटक। यह वही काल था जब धीरे-धीरे भारत यूरोप और विशेषतः ब्रिटेन का उपनिवेश बनता जा रहा था। इस काल के नाटकों में भारतीय रूढीवाद और पिछड़ेपन पर व्यंग्य भी था तो विदेशियों की कुचालों के प्रति चेतावनी और सबसे प्रखर जो स्वर उठा वह था नवजागरण और नवनिर्माण का।

१.३.२ द्विवेदी कालीन:

हिंदी साहित्य का यह काल आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी के नाम से सुशोभित है। इस काल में हिंदी साहित्य की अन्य गद्य विधाओं का नाटक की तुलना में अधिक विकास हुआ।

एक ओर जनता मनोरंजन हेतु व्यवसायिक नाटकों में अधिक रुचि लेने लगी तो दूसरी ओर भारतेंदु काल में अव्यवसायिक नाट्य मंडलियों का भी विघटन होने लगा। इस काल में मौलिक विषयों पर नाट्य साहित्य की अपेक्षा पौराणिक आख्यानों को ही नाट्य रूपों में रचा जाने लगा। इन लेखकों का रंगमंचीय ज्ञान अधिक न होने के कारण यह साहित्य रूप में ही रहे, इनका प्रस्तुतिकरण न के बराबर ही हुआ। इस काल में अन्य भाषाओं के नाटकों की शैलियों का भी लिखने में प्रयोग हुआ।

द्विवेदी काल में लिखित कुछ नाटक इस प्रकार हैं :- लक्ष्मीप्रसाद का 'उर्वशी', सत्यनारायण का 'कविरत्न', बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरूवन दहन', बनवारीलाल का 'कंसवध', वृंदावन लाल का 'सेनापति उदल', भगवती प्रसाद का 'वृद्ध विवाह' आदि उल्लेखनीय हैं। इस काल में फारसी और पारसी दोनों के थिएटरों से प्रभावित होकर कुछ मनोरंजक प्रहसन भी लिखे गए। परंतु इनका उल्लेख मात्र ही प्राप्त होता है। रंगमंच पर इनके प्रस्तुतिकरण को अधिक प्रतिसाद नही मिला।

१.३.३ प्रसाद कालीन:

हिंदी नाटकों के संबंध में यदि प्रसादकाल को स्वर्णकाल भी कहा जाए तो अतिकथनी नही होगी। हिंदी साहित्य के इतिहास में जयशंकर प्रसाद का नाम ध्रुवतारे के रूप में प्रकाशमान है। जहाँ जयशंकर प्रसाद एक महाकवि हैं वहीँ एक महानाटककार भी हैं।संस्कृत निष्ठ हिंदी भाषा के संवादों और सशक्त विषयों से अलंकृत उनके नाटक अपने आप में अनुपम हैं। जयशंकर प्रसाद ने वास्तव में हिंदी नाट्य साहित्य को अभिजात्य पद तक पहुँचा दिया।प्रसाद के आरंभिक नाटकों में विषयों और शैलियों को लेकर नवीनता थी परंतु अभी परिपक्वता नहीं आई थी। इन्हीं नाटकों ने भविष्य में उत्तम श्रेणी में हिंदी नाटकों का द्वार खोला। इन नाटकों में

१९१०- सज्जन

१९१२- कल्याणी परिचय

१९१३- करुणालय

१९१४- प्रायश्चित

१९१५- राज्यश्रयी

इन नाटकों को नाटक कम और नाट्य साहित्य ही अधिक कहा जा सकता है। जिन विचारों को इन नाटकों में प्रसाद ने उभारा, उन्हीं को परवर्ती काल में प्रौढ अनुभव के साथ नये रूपों में प्रस्तुत किया। प्रसाद के अति प्रसिद्ध नाटकों में आते हैं

१९२१- विशाख

१९२२- अजात शत्रु

१९२३- कामना

१९२३- जनमेजय का नाग यज्ञ

१९२८- स्कंदगुप्त

१९२९- एक घूँट

१९३१- चंद्रगुप्त

१९३३- ध्रुवस्वामिनी

इन नाटकों में पौराणिक आख्यानों के स्थान पर गुप्त कालीन इतिहास और इस प्रकार के गौरवमयीऐतिहासिक घटनाक्रमों को पूरे वैभव के साथ प्रस्तुत किया गया। इन नाटकों की सबसे बड़ी विषयगत विशेषता यही थी कि कथा ऐतिहासिक थी परंतु संदर्भ समकालीन था। अंग्रेजों के उपनिवेशवाद की पराधीनता में प्रसाद ने ऐतिहासिक स्वाभिमान की ज्वाला को पुनर्जीवित किया। उनके नाटकों के गीत समकालीन उद्बोधन का प्रेरणा स्त्रोत बन गए। यह भारतीय स्वाधीनता संग्राम में एक परोक्ष भूमिका थी।

इन नाटकों की अन्य विशेषताओं में से एक थी प्रसाद के पात्र और प्रसाद द्वारा उनका चरित्र चित्रण। इन नाटकों में महानायकत्व को प्रधानता थी। स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, अजातशत्रु जैसे चरित्र साहित्य में उभारना ही उनकी कला थी। ध्रुवस्वामिनी जैसी महानायिका ने तो स्त्री संघर्ष को एक नया आयाम दिया। किसी नाटक को नायिका के नाम से नामांकित करना उस काल के लिए बिलकुल भी सुलभ नही था। प्रसाद के नाटकों की एक अन्य विशेषता थी उनकी संस्कृतनिष्ठ हिंदी और अति स्पष्ट संवाद। अजातशत्रु का पहला संवाद "क्यों रे लुब्धक आज तू मृगशावक नही लाया, अब मेरा चित्रक किससे खेलेगा?"अकेला ही अजातशत्रु के चरित्र चित्रण में पर्याप्त है। उनके नाटकों में गीतों की विशेष व्यवस्था होती थी।

मंचन के दृष्टिकोण से प्रसाद के नाटकों में कुछ सम्सयाएँ आती रही हैं। जैसे अत्याधिक गीत, सेना और युद्ध के दृश्य, स्वगत संवाद आदि। कुछ विद्वान तो प्रसाद के नाटकों को मंच निर्पेक्ष मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्रसाद ने नाटक नही नाट्य साहित्य की रचना की है।

प्रसाद के नाटकों से प्रेरणा पाकर उस काल में अन्य कई लेखकों ने भी उन्हीं की परिपाटी पर नाटक लिखे। इससे आगे उस काल में समाजवादी, यथार्थवादी और समस्याप्रधान नाटकों का भी सृजन हुआ। प्रसादकालीन कुछ नाटकों के नाम इस प्रकार है

१९१८- सीय स्वयंवर- अंबिका दत्त त्रिपाठी

१९२१- देवी द्रौपदी- रामचरित उपाध्याय

संग्राम- प्रेमचंद

१९२२- महाराणा संग्राम सिंह- गणेशदत्त

१९२३- अंजना- सुदर्शन

सम्राट अशोक- चंद्रराज भंडारी

कंजूस की खोपड़ी- गोविंदवल्लभ पंत

१९२४- सुभद्रा- राम नरेश त्रिपाठी

१९२५- दुर्गावती- बदरीनाथ भट्ट

१९२६- वीर अभिमन्यु- परिपूर्णनंद वर्मा

ऑनरेरी मजिस्ट्रेट- सुदर्शन

१९२९- विक्रमादित्य- उदयशंकर भट्ट

उत्सर्ग- आचार्य चतुरसेन शास्त्री

प्रताप प्रतिज्ञा- जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद

१९३२- विचित्र विवाह- बलदेव प्रसाद मिश्र

१९३४- शीव साधना- हरिकृष्ण प्रेमी

१९३७- प्रतिशोध- हरिकृष्ण प्रेमी

१९३८- सुदामा- किशोरीदास वाजपेयी

इस काल में कुछ मनोरंजक एवं हास्य नाटक भी लिखे गए।

१.३.४ प्रसादोत्तर कालीन:

प्रसाद काल के नाटकों से प्रेरणा लेकर प्रसाद कालीन नाट्य साहित्य की प्रवृत्ति को उनके परवर्ती नाटककारों ने भी गंभीर विषयों को लेकर अनुसरण किया। इस काल के प्रमुख नाट्य साहित्यकार थे- सियारामशरण गुप्त, वृंदावनलाल वर्मा, सेठ गोविंददास, लक्ष्मी नारायणमिश्र, जगदीशचंद्र माथुर, उपेंद्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट आदि। १९४० से लेकर १९७० तक के काल में हिंदी नाटकों में विषय और प्रस्तुतिकरण को लेकर बहुत बदलाव आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अब राष्ट्रभक्ति नवविकास में परिवर्तित हो गई,साथ नई समस्याओं ने भी जन्म लिया। इस काल में प्रस्तुत नाटक यथार्थवादी, समस्या प्रधान, सामाजिक चेतना एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद (का मोह भंग, धर्मवीर भारती का अंधायुग १९५५, इसका उत्तम उदाहरण हैं) के विषयों पर आधारित थे। इस काल में नाट्य साहित्य को सफलता से रंगमंच पर प्रस्तुत भी किया जाने लगा। इस काल के प्रमुख नाटक हैं –

१९४०- कोणार्क - जगदीशचंद्र माथुर

१९४८- काश्मीर का काँटा- वृंदावनलाल वर्मा

झाँसी की रानी - वृंदावनलाल वर्मा

१९५०- पूर्व की ओर - वृंदावनलाल वर्मा

१९५०-६०- क्रांतिकारी, नया समाज - उदयशंकर भट्ट

- अंधा कुंआ, मादा कॅक्टस, तीन आँखों वाली मछली, सुखा सरोवर, सुंदररस- लक्ष्मी नारायण लाल
- मानव प्रताप- देवराज दिनेश
- अंधा युग- धर्मवीर भारती
- आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश

१९६०-७० - रात रानी, दर्पण - लक्ष्मी नारायण लाल

- लहरों का राजहंस, आधे अधूरे - मोहन राकेश

- शरदीया, पहला राजा- जगदीशचंद्र माथुर

१.३.५ समकालीन:

१९७० के बाद से अब तक के नाटकों को समकालीन माना जा सकता है। इस काल तक आते-आते लंबे नाटकों का प्रचलन घटने लगा। समय के अभाव में छोटे नाटक और एकांकियोँ का सृजन भी अधिक हुआ और उन्हें पसंद भी किया गया। विषयगत दृष्टिकोण से समकालीन नाटक अधिक गंभीर होते गए। जिन विषयों को इससे पहले लेने का साहस लेखक नही कर पाए ऐसे विषयों पर भी सार्थक और प्रभावी नाटक लिखे गए। बेमेल शादियाँ, दहेज समस्या,स्त्री शिक्षा, स्त्री भ्रूण हत्या, दलित विमर्श आदि जैसे विषयों को सफलता से प्रस्तुत किया गया।

इस काल के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता एक बहुत बड़ा तत्व रही है। कई जटिल प्रश्नों के मनोवैज्ञानिक तथ्य और विश्लेषण इस काल के नाटकों द्वारा प्रस्तुत किए गए। जैसा कि डॉ. शंकर शेष ने अपने नाटक 'खजुराहो का शिल्पी" (१९७०) में किया है। सन २०१५ में प्रकाशित दयाप्रकाश सिन्हा का नाटक 'कथा एक कंस की' में कंस एक पौराणिक नकारात्मक चरित्र था। यह नाटक खलनायक की मानसिकता को आधुनिक संदर्भ में बहुत ही प्रभावी

रूप से प्रस्तुत करता है। समकालीन नाटकों में अब तक गीति नाट्यों की परंपरा का निर्वाह हो रहा है जिसमें नरेश मेहता का नाटक 'संशय की एक रात' (२०१२) उल्लेखनीय है। इसी श्रेणी में विवादास्पद नाटक 'खंड खंड अग्नि' (१९९४) का उल्लेख करना अति आवश्यक है। दिविक रमेश की यह कृति है तो रामायण के पौराणिक धरातल पर परंतु इसमें उठाये गए प्रश्न अति आधुनिक एवं समकालीन समाज का दर्पण हैं। भीष्म साहनी के सभी छः नाटक समकालीन नाटकों को एक नया आयाम देते हैं। यह नाटक हैं, हानूश (१९७६), कबिरा खड़ा बाजार में (१९८१), माधवी (१९८४), मुआवजे (१९९३),रंग दे बसंती चोला (१९९८), आलमगीर (१९९९)। इनमें से मुआवजे अत्याधुनिक राजनैतिक परिवेश को दंगों जैसे संवेदनशील विषय के साथ पूरी इमानदारी से प्रस्तुत करता है।

समकालीन नाटकों की भाषा में भी बहुत प्रयोग किए गए हैं। अब केवल संस्कृतनिष्ठ हिंदी के स्थान पर हिंदी के वर्तमान स्वरूप का प्रयोग किया जाता है। समकालीन नाटकोंमें यदि सर्वाधिक परिवर्तन आया है तो वह है रंगमंचीय क्षेत्र में। अब आधुनिक तकनीक की सहायता से उन दृश्यों को भी दिखाना संभव और सरल हो गया है जिन्हें पहले दर्शकों की कल्पना पर छोड़ दिया जाता था। कुल मिलाकर हिंदी नाटकों में कालांतर स्वरूप परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है।

१.४ स्थानांतर स्वरूप

हिंदी नाटकों में विभिन्न स्थानों के अनुसार अनेक स्वरूप एवं भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं। भारत के प्रत्येक राज्य की भाषा शैली और संस्कृति का स्थानीय हिंदी नाटकों पर स्पष्ट

प्रभाव दिखाई देता है। क्षेत्रीय लोक-नाट्य शैलियों ने भी हिंदी नाटकों को प्रभावित किया है। प्रांतों और अंचलों की सभ्यता का तो स्पष्ट प्रभाव है ही। वर्तमान नाटकों में विदेशी नाट्य शैली, भाषा एवं संगीत का भी प्रयोग होता है।प्रवासी भारतीय नाटकों के स्वरूप में स्थानीय अंतर परिलक्षित होता है। यहाँ प्रकरण विस्तार से बचते हुए इनका अधिक विवरण नहीं प्रस्तुत किया जा रहा है। विशेष संदर्भ अथवा शोध में इस विषय को अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

१.५ प्रकारांतर स्वरूप

जिस प्रकार काल एवं स्थान से नाटक के स्वरूप में अंतर आता है उसी प्रकार नाटकों में शैली अथवा प्रकारगत कारणों से भी स्वरूप में अंतर आता है। प्राचीन काल से अब तक नाटकों के कई प्रकार माने गए हैं। प्राचीन पाश्चात्य चिंतक अरस्तु ने नाटकों के दो मुख्य प्रकार माने हैं 'त्रासदी' और 'कामदी'। भारत में भी प्राचीन काल से त्रासदी के अंतर्गत सुखांत एवं दुखांत और हास्य की प्रधानता थी। आम जनता में लोकनाट्य कलाशैली विभिन्न रूपों प्रचलित रही है। रामायण के आधार पर रामलीलाएँ इसी प्रकार कीलोकनाट्य शैली है जो आज तक किसी न किसी रूप में विद्यमान है। आज के काल में नाटक अब केवल विद्वानों का साहित्य अथवा रसिकों का मनोरंजन ही नहीं रह गए है। अब यह शिक्षा और जागरुकता का भी माध्यम बन गए हैं। अब विद्यालयों, महाविद्यालयोंएवं समाज सेवी संस्थाओं द्वारा भी नाटकों का प्रयोग होता है। प्रकार के अनुसार नाटकों के कुछ स्वरूप निम्नलिखित हैं।

शास्त्रीय नाटक - Classical play

त्रासदी प्रधान नाटक - Tragedy play

हास्य/व्यंग्य प्रधान नाटक - Comedy play

मनोरंजक नाटक - Entertaining play

घटना प्रधान नाटक - Incidental play

समस्या प्रधान नाटक - Problem based play

लोक नाट्य - Folk theatre/ play

गीति नाट्य - Melodrama

प्रहसन - Skit

एकांकी - One act play

नुक्कड नाटक - Street play

पथ नाट्य - Street play

नौटंकी, रामलीला, रासलीला, स्वांग आदि

इनके अतिरिक्त भी नाट्य विधाओं में कथा साहित्य अन्य माध्यमों से भी प्रस्तुत किया जाता है। समकालीन दौरे में तो कहानी, उपन्यास आदि विधा को भी नाटकों में रूपांतरित किया जाता है। जैसे कहानी 'भोलाराम का जीव' का अनेकों बार नाट्य प्रस्तुतिकरण हुआ है, व्यंग्यनिबंध 'वसीयत' बड़े ही प्रभावी ढंग से खेला जा चुका है। मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' का तो नाट्य रुपांतरण, प्रस्तुतिकरण ही नही छायांकन भी हुआ है जिसे अब के दौर में youtube जैसे पटलों पर भी देखा जा सकता है। हिंदी नाटक स्वरूपगत विशेषताओं के कारण साहित्य की अति महत्वपूर्ण एवं समृद्ध धरोहर है।

१.६ सारांश

इस इकाई में हमने नाट्य सहित्य और नाटक को समझने का प्रयास किया और यह समझा कि कथा शैली का संवादों के साथ लेखन, नाट्य साहित्य है और इसी साहित्य का रंगमंचीय (अभिनय) नाटक है। हमने नाटक के अर्थ और परिभाषा को भी समझने का प्रयास किया जिसमें तीन मुख्य धारओं में हिंदी नाटक के स्वरूप को विभाजित किया। कालांतर स्वरूप (हिंदी नाटक का उद्भव और विकास), स्थानांतरित स्वरूप (क्षेत्रीय) एवं प्रकारांतर स्वरूप (शैली) अतः इस इकाई से हिंदी नाटकों के लेखन और प्रकाशन को समझने में सहायता मिली साथ ही आरंभिक काल से लेकर अब तक की हिंदी नाट्य यात्रा का भी अध्ययन किया।

१.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

१) नाट्य साहित्य एवं नाटकों के अंतर को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

२) नाटक के अर्थ और परिभाषा को समझाते हुए हिंदी नाटकों की विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

३) नाटक के विभिन्न स्वरूपों को सोदाहरण समझाइए।

१.८ टिप्पणियां

१) भारतीय नाट्य साहित्य

२) प्रसाद पूर्व नाट्य साहित्य

३) प्रसाद कालीन नाटक

४) प्रसादोत्तर कालीन नाटक

५) समकालीन नाटक

६) नाटकों के प्रकार

*****

२

नाटक और रंगमंच, रंग विमर्श

इकाई की रूपरेखा

२.० इकाई का उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ पारसी नाटक मंडली

२.३ इंडियन पीपुल्स थियेटर असोसिएशन 'इप्टा'

२.४ पृथ्वी थियेटर

२.५ रंगमंच का तकनीकी विमर्श

२.५.१ रंगमंच का दल

२.५.२ साहित्य लेखन का दल

२.६ तंत्र निदेशक दल

२.७ सारांश

२.८ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

२.९ टिप्पणियां

२.० इकाई का उद्देश्य

- विद्यार्थियों में रंगमंच और नाटक की जानकारी।
- विद्यार्थियों में विविध नाटक मंडलियों की जानकारी।
- विद्यार्थियों में रंगमंच की तकनीकी विमर्श की जानकारी।

२.१ प्रस्तावना

नाटक और रंगमंच का बहुत ही गहन अंतरंग संबंध है। नाटक मूर्तिमान ही रंगमंच पर होता है। नाटक की विशेषता ही दृश्य श्रव्य माध्यम से कथा का प्रस्तुतीकरण है। अभिनेता, संवाद शैली, वेशभूषा आदि मिलकर किसी भी नाट्य साहित्य को रंगमंच पर जीवित कर देते हैं। नाटक और रंगमंच के संबंध में प्राचीन काल से विभिन्न आचार्यों ने अपने अपने मत सामने रखे हैं। किसी ने नाट्य साहित्य को अधिक महत्व दिया तो किसी ने नाटक की मंचनीयता को परंतु नाटक और रंगमंच के अंर्तसंबंध को कोई भी नकार नहीं सका।

नाट्य साहित्य का लेखन एक परिष्कृत कला है वहीं रंगमंच प्रस्तुतीकरण भी अनेक कलाओं का संगम है जिसमें से निर्देशन, अभिनय, गायन, नृत्य, संगीत, परिधान नियोजन, शृंगार कला, अलंकरण कला, मंच सज्जा आदि सम्मिलित हैं जिनके लिए विशेष प्रतिभा

और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। संस्कृत नाटकों के काल से आज के आधुनिक काल तक उपरोक्त उल्लिखित कार्य, खास पेशे (व्यवसाय) हैं एवं धन अर्जन का साधन भी हैं।

प्राचीन काल से इन नाटकों को रंगमंच/ रंगमहल/ रंगमंडप में प्रस्तुत करने हेतु विशेष दल/मंडलियां बनती रहीं हैं जहाँ लेखक से लेकर पर्दा उठाने वाले का विशेष कार्य रहा है। हिंदी नाटक भारतेंदु काल से ही अस्तित्व में आए और इसके साथ ही नाटक को रंगमंच पर सफलता से प्रस्तुत करने हेतु कई नाटक मंडलियों का भी गठन हुआ जिनमें से कुछ व्यवसायिक थीं कुछ अव्यवसायिक (जिनका उद्देश्य अर्थ अर्जन न करके साहित्य साधन था) थीं। हिंदी साहित्य के इतिहास में अनेक विद्वानों ने नाटक के उद्भव एवं विकास के अंर्तगत इन नाटक मंडलियों के इतिहास को प्रस्तुत किया है। अत: हिंदी नाटक और रंगसंच पर विचार हेतु हिंदी रंगमंच पर लिखे गए कुछ तथ्यों के अध्ययन के पश्चात हम हिंदी रंगमंच के उद्भव एवं विकास पर चर्चा करेंगे। १८६०-७० काल से आरंभ होकर १९२५ तक के काल को हम हिंदी रंगमंच का आरंभिक काल मान सकते हैं। इस काल में एक ओर जहाँ नाट्य साहित्य की रचना हो रही थी एवं नाटकों में स्वरूपगत परिवर्तन आ रहा था वहीं दूसरी ओर नाटकों के मंचन हेतु भी बहुत प्रयास हुए। हिंदी साहित्य के इतिहास के आधार पर हम कुछेक महत्वपूर्ण रंगमंच समूहों का अध्ययन करेंगे।

२.२ पारसी नाटक मंडली

१८५० के बाद यदि किसी प्रमुख रंगमंच की चर्चा करनी हो उनमें सर्व प्रथम नाम पारसी रंगमंच का ही आता है जो विशेषत: मुंबई से कार्यरत था। इतिहासानुसार १८५३ में पारसी रंगमंच के हिंदी नाटक प्रेमियों द्वारा 'पारसी नाटक मंडली' की स्थापना हुई।

वास्तव में मुंबई, कलकत्ता, मद्रास आदि बड़े शहर १८५७ की क्रांति से पूरी तरह अछूते रहे। जिस काल में समूचा उत्तरी भारत स्वाधीनता के प्रथस संग्राम को अपनी आहुतियों से प्रखर कर रहा था उस काल में मध्य, पूर्वी एवं दक्षिणी भारत में शांति व्याप्त थी अत: यहां कलाप्रेमियों के पास संगीत, नृत्य, नाटक आदि कलाओं के संवर्धन हेतु समय उपलब्ध था। नाट्य साहित्य के लेखकों जैसे कि स्वयं भारतेंदु आदि की रचनाओं में देश की समसामयिक दुर्दशा झलक रही थी परंतु इसका प्रभाव कलाप्रेमियों पर कहीं नहीं पड़ा था। वरन् उन्होंने अंग्रेजी नाटकों की तर्ज पर मुंबई व अन्य पश्चिमी क्षेत्रों में भारतीय भाषाई नाटकों को विभिन्न स्वरूपों में प्रस्तुत करना आरंभ कर दिया।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के अनुसार १८५९ में, 'बॉम्बे थियेटर' का गठन हुआ जिसमें विदेशी अंग्रेजी नाटकों की नकल पर अंग्रेजी में ही नाटक खेले जाते थे अतः हिंदी प्रेमियों ने इसके विरोध में आगे चलकर 'हिंदू ड्रामेटिक कोर' (Hindu Dramatic Core)' नामक नाटक दल की स्थापना की। इन कंपनियों ने व्यवसायिक नाटकों की नींव डाली। इनके पास अच्छे लेखक, अभिनेता, मंच सज्जाकार आदि सभी थे जिनकी एक सफल नाटक मंचन के लिए आवश्यकता होती है। इस दौर में बहुत से प्रभावी नाटकों का मंचन हुआ।

इस काल के नाटक व्यवसायिक नाटकों की श्रेणी में आते हैं क्योंकि इनका मुख्य ध्येय धन अर्जन था। परंतु धन प्राप्ति हेतु भी इन नाटक मंडलियों ने हिंदी नाटक को एक नया रूप प्रदान किया। मध्यकाल में जहाँ नाटकों की कमीं दिखाई देती थी वहीं पारसी नाटकों ने उसे

बखूबी पूरा किया। इस काल में नाटक मनोरंजक होने के साथ साथ पौराणिक आख्यानों और काल्पनिक कथाओं का प्रस्तुतीकरण भी होते थे। कुछ प्रसिद्ध नाटकों का उल्लेख यहाँ आवश्यक है।

- गंगावतरण- श्री कृष्ण हसरत
- रुस्तम और सोहराब, आँख का पानी, सफेद खून-आगाहश्र कश्मीरी
- जनकनंदिनी- तुलसीदास शेदा
- कृष्णावतार, वीर अभिमन्यु, मशरिकी हूर, श्रवण कुमार - राधेश्याम कथावाचक
- कन्या विक्रय, देवयानी परिणय-जमुनादास मेहरा आदि

पारसी रंगमंच ने हिंदी नाटक एवं रंगमंच को बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है परंतु हिंदी साहित्य के इतिहास में इन्हें अधिक श्रेय नहीं मिला। नाट्य साहित्य, नाटक एवं रंगमंच पर शोध करने वाले शोधकर्ताओं को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

२.३ इंडियन पीपुल्स थियेटर असोसिएशन इप्टा

इतिहास अनुसार इप्टा का जन्म २५ मई १९४३ को मुंबई में हुआ था। इसके पूर्व भी कलकत्ता एवं बैंगलोर में इस नाटक दल के पूर्व रूप घटक दिखाई देते हैं। १९४० तक आते आते पारसी रंगमंच का ह्रास होने लगा। देश जिन परिस्थितियों का सामना कर रहा था उसमें शुद्ध मनोरंजन को महत्व मिलना कम हो गया। मनोरंजन का स्थान जन चेतना ने ले लिया और इसी जन जागृति के उद्देश्य से इप्टा का जन्म हुआ जिसने कालांतर में बहुत से सफल नाटक प्रस्तुत किए एवं दिग्गज रंगमंच और फिल्म, निर्माता, निर्देशक और अभिनेता देश को दिए। कहा जाता है कि इस दल को इसका नाम 'पिपुल्स थियेटर' प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. होमी जहांगीर भाभा ने दिया है।

इप्टा से समय समय पर अनेक गणमान्य व्यक्ति संबंधित रहें हैं परंतु इनके संस्थापक श्री पी. सी. जोशी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे अतः लोगों ने इप्टा को कम्युनिस्ट पार्टी का ही प्रचार तंत्र मानना आरंभ कर दिया जो कि एक भ्रम था। श्री पी. सी. जोशी एक कलाप्रेमी एवं कला संवर्धक रहे हैं और कम्युनिस्ट पार्टी से भी जुड़े थे जो कि एक संयोग मात्र था। वास्तव में इस दल ने भारतीय जनमानस की दुखती रग पहचान कर नाटकों के माध्यम से उसे प्रखर रूप में जनता के समक्ष रखा कि अपने अपने समय तत्कालीन सत्ताधारियों के लिए असहनीय था। अतः इप्टा को कम्युनिस्ट बताने वाली बातों को तुल भी इन्होंने ही दिया था।

इप्टा ने अपने संस्थापन काल से ही बहुत गंभीर मुद्दों को नाटक का विषय बनाया। १९३९ में आरंभ हुए द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीय सैनिकों को अकारण ही अंग्रेजों के युद्ध में सहायक बनना पड़ा जबकि भारत स्वंय अंग्रेजों के साम्राज्यवाद का शिकार था। तत्कालीन कांग्रेस ने कभी भी और कहीं भी इसका विरोध नहीं किया। इन सैनिकों की अनजान विदेशी भूमि पर युद्धों को भारतीय इतिहास में सही स्थान नहीं मिला। सैंकड़ों ने अनजान शहादतें दीं, हजारों सदा के लिए अपंग हो गए और जो फिर भी जीवित रह कर लड़ रहे थे उनकी नारकीय यातनाओं को भारतीय जनमानस के सामने पहली बार इप्टा ने नाटकों के माध्यम से रखा।

बंगाल के अकाल ने लाखों लोगों की जान ले ली परंतु अंग्रेज सरकार की ओर से उनके लिए कोई प्रावधान नहीं किए गए। अभी बंगाल की विकट समस्या चल ही रही थी कि राष्ट्र विभाजन का संकट, काल बनकर पंजाब और बंगाल पर टूट पड़ा। एक ओर लहलहाता पंजाब तो दूसरी ओर अकाल और भूखमरी से जूझते बंगाल का विभाजन हुआ। जहाँ १५ अगस्त १९४७ को सारा देश स्वतंत्रता की खुशी मना रहा था वहीं पंजाब और बंगाल में हाहाकार मचा हुआ था। मुंबई को सीधे तौर पर विभाजन से कोई हानि नहीं हुई परंतु इप्टा ने इस विभीषिका को समझते हुए अपना दायित्व पूरी तरह निभाया और रंगमंच को सड़कों और गलियों तक ले आए, दंगों और खून खराबे के बीच इन्होनें शांति स्थापना हेतु अनेकों नाटकों का प्रदर्शन किया। इप्टा ने वास्तविक जीवन के रंगमंच को एक नए शिखर पर पँहुचा दिया। विभाजन साहित्य के सभी लेखक और दिग्गज कलाकार इप्टा से संबंधित रहें हैं, जिनमें बलराज साहनी, पृथ्वी राज कपूर, ऋत्विक घटक, दीना पाठक, सलिल चौधरी, सफदर हाशमी, अन्ना भाऊ साठे, मजरुह सुलतानपुरी, कैफी आज़मी, शंभू मित्रा, बिमल रॉय, फारुख शेख, सुलभा आर्य, बिजॉन भट्टाचार्य, उत्पल दत्त, ख्वाजा अहमद, पंडित रविशंकर, अंजन श्रीवास्तव आदि प्रमुख हैं।

इप्टा के साथ रंगमंच से संबंधित नौजवान बहुत बड़ी संख्या में जुड़ते गए और इप्टा सफलता की राह पर चलता गया। कालांतर में इप्टा की क्षेत्रीय उप-शाखाएं भी बनीं और ऐसा माना जाता है कि इन्हीं से इप्टा की मुख्य इकाई का विघटन हुआ परंतु इप्टा से जुड़े बहुत से लोग यह मानते हैं कि इप्टा टूटा नहीं वह आज भी बदले हुए रूप में हिंदी रंगमंच को अपना योगदान दे रहा है।

२.४ पृथ्वी थियेटर

हिंदी सिने जगत में कपूर खानदान की कई पीढ़ियां अपने अभिनय एवं लोकप्रियता का लोहा मनवा चुकी हैं। हिंदी सिनेमा की अनेक प्रख्यात विभूतियां पृथ्वी थियेटर की ही देन हैं। वास्तव में पारसी रंगमंच के अंतिम काल में भारत में अधिक संवेदनशील एवं यथार्थवादी नाटकों को महत्व दिया जाने लगा। अनेक नाटक मंडलियों ने इसमें अपनी भूमिका निभाई। १९४३ में इप्टा की स्थापना हुई और यहीं से हिंदी नाटक का एक नया दौर आरंभ हुआ। सन १९४४ में पृथ्वी राज कपूर ने मुंबई में पृथ्वी थियेटर की स्थापना की।

यह एक भ्रमण नाट्य पथक (Mobile Drama Units) थे, इस संस्था ने १२५ से भी अधिक स्थानों पर घूम घूम कर नाटक प्रदर्शित किए और आम जनमानस को नाटक से जोड़ा। विभाजन के पूर्व ही देश में हिंदू-मुसलमान अलगाव आरंभ हो गया था जो विभाजन के समय अपने भयानक रूप में प्रकट हुआ। पृथ्वी थियेटर ने इस विकट काल में धार्मिक सौहार्द को पुर्नस्थापित करने का कठिन कार्यभार संभाला और संवेदनशील एवं यर्थाथवादी विषयों पर नाटकों का मंचन किया। इस दौर में, 'पैसा और किसान', 'दीवार', 'कलाकार', 'आहुति', 'पठान' जैसे सफल नाटक प्रदर्शित किए गए। दीवार नाटक में विभाजन के पूर्व ही विभाजन की त्रासदी को दर्शाया गया जो बाद में पूर्वानुमान साबित हुई। आहुति और गद्दार जैसे नाटकों में हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल देते हुए धार्मिक सहिष्णुता को दर्शाया गया।

अपने आरंभिक नाटक, 'शंकुतला' से पृथ्वी थियेटर अति लोकप्रिय हो गया था। इसमें दुष्यंत की भूमिका स्वयं पृथ्वी राज कपूर और भरत की भूमिका शशि कपूर ने निभाई थी। इतिहास अनुसार इस थियेटर के पहले नाटक के ही २०० से अधिक प्रदर्शन हुए। ऐसी स्थिति में जब पृथ्वी थियेटर संवेदनशील नाटक लेकर आया तो इन नाटकों ने न केवल कला साधना में ही योगदान दिया वरन् यह लोकचेतना का भी प्रमुख साधन बन गए। जनता पर इनका प्रभाव बहुत गहरा था। आम लोग भी इन्हें केवल नाटक मानकर मनोरंजन तक सीमित न रहकर इनका अनुसरण भी करते थे।

पृथ्वी राज कपूर द्वारा १९४४ में स्थापित करने के १४ वर्ष बाद १९६० में यह थियेटर बंद हो गया जिसे कुछ वर्षों पश्चात शशि कपूर ने पुनर्स्थापित किया जिसे वे और उनकी पत्नी जेनिफर चलाते रहे। तत्पश्चात उनके पुत्र करण कपूर ने इसकी बागडोर संभाली जो कि एक प्रख्यात मॉडल और अभिनेता हैं। करण कपूर के लंडन में बस जाने के बाद शशि कपूर की बेटी संजना कपूर ने इसे संभाला और वर्तमान दौर में भी कपूर खानदान की चौथी पीढ़ी सफलता से इसका सूत्र संचालन कर रही है।

पृथ्वी थियेटर ने संसार के नाट्य साहित्य में अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इस संस्था में नाटकों का निर्देशन स्वयं पृथ्वी राज कपूर किया करते थे। उनके साथ लगभग १५० लोगों का दल था जो लगातार भ्रमण करते हुए नाटकों का प्रदर्शन करता था। इस थियेटर के नाटकों के सर्वाधिक प्रदर्शन हुए। ' दीवार' नाटक का ७०० से अधिक बार प्रदर्शन हुआ, 'पठान' नाटक के ५५० से अधिक प्रदर्शन हुए। पृथ्वी थियेटर के दूसरे काल में बब्बन खान का नाटक, 'अदरक के पंजे' ने विश्व कीर्तिमान स्थापित किया। यह विश्व का सबसे लंबा चलने वाला नाटक है जो १९६५ से २००१ तक लगातार प्रदर्शित हुआ। इस थियेटर ने अनेक दिग्गज कलाकार, नाटकों के साथ साथ भारतीय सिनेमा जगत को भी दिए। बहुत से कलाकारों एवं अभिनेताओं ने अपने हुनर को पृथ्वी थियेटर के रंगमंच पर ही निखारा। इस संस्था से जुड़े बहुत से कलाकारों को अनेक रूपों में सम्मानित एवं पुरस्कृत भी किया जा चुका है।

यह थियेटर आज भी अपनी गौरवमई धरोहर के साथ चल रहा है। अब भी यहां नाटकों का सफल मंचन हो रहा है। अब भी हिंदी नाटक और सिनेमा जगत से जुड़ीं अनेक हस्तियां इस थियेटर को चार चाँद लगा रही हैं। हिंदी नाट्य साहित्य के उत्कृष्ट नाटकों का मंचन करते हुए पृथ्वी थियेटर ने नाटक और रंगमंच की गरिमा को कायम रखा है। समकालीन नाटकों में व्यवसायिक एवं अव्यवसायिक नाटकों के सफल मंचन के साथ पृथ्वी थियेटर का हिंदी थियेटर में विशेष स्थान है।

खुला रंगमंच:

मंचहीन नाट्य प्रस्तुति को खुला रंगमंच कहा जाता है। इन नाटकों को नुक्कड़ नाटक, पथ नाट्य (Street Play), सामाजिक नाटक, जनवादी नाटक आदि नामों से भी जाना जाता है। अमंचनीय प्रस्तुतीकरण का चलन तो आदिम काल से रहा है परंतु हिंदी में खुला रंगमंच के लिए अंग्रेजी के स्ट्रीट प्ले और विस्तृत रूप से योरोप के स्ट्रीट कॉर्नर थियेटर का प्रयोग ही होते है। हिंदी के नाटकों को विशेष रूप से प्रस्तुत किए जाने के संदर्भ में नुक्कड़ नाटक ही सबसे प्रसिद्ध शब्द है।

खुला रंगमंच प्रत्येक उस प्रस्तुति को कहा जाता है जिसके लिए मंच की आवश्यकता नहीं होती, यह कहीं भी खेला जा सकता है। किसी गली में, चौराहे पर, मैदान में, फुटपाथ पर, रेलवे स्थानक पर या मेले आदि में। इस प्रकार के नाटक व्यवसायिक रंगमंच से लेकर साधारण प्रस्तुतकर्ता तक सभी करते हैं। पिछले कुछ दशकों से तो यह विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम का भी भाग रहे हैं। बहुत से विषयों के प्रकल्प कार्यों में शिक्षा और व्यवसायिक संस्थान पथ / नुक्कड़ नाटकों का प्रयोग करते हैं। आज महानगरों से लेकर कस्बों और गांवों तक में इस प्रकार के नाटक एक आम प्रक्रिया बन गए हैं जिनमें प्रस्तुतकर्ता के साथ-साथ दर्शकों का बहुत बड़ा वर्ग जुड़ चुका है।

खुले रंगमंच का प्रयोग प्रागैतिहासिक काल से आज तक किसी न किसी रूप में होता रहा है। मानव ने जब से संप्रेषण आरंभ किया और भाषा का विकास हुआ तब से वह व्यक्तिगत एवं सामुहिक रूप में संप्रेषण करते हुए अनेकों बार जन संबोधन या जन अभिनय का प्रयोग करता होगा। यही आरंभिक काल के जन नाटक थे। प्राचीन काल में, विशेष रूप से भारत में उत्कृष्ट स्तर के शास्त्रीय (classical) एवं अभिजात्य नाटकों का प्रचलन रहा है जिन्हें राज्याश्रय भी प्राप्त था। उस काल में नाटक प्रायः दरबार, रंगमहल, क्रीड़ा भवन अथवा विशेष रूप से निर्मित स्थलों पर खेले जाते थे। इतिहास अनुसार कभी-कभी अति लोकप्रिय नाटकों को राज्य द्वारा आम जनता के लिए भी प्रदर्शित किया जाता था। इनमें से कुछ नाटक मंचविहीन भी खेले जाते थे। यह जनता के आमोद प्रमोद का बहुत बड़ा साधन बने और इस प्रकार कालजयी कृतियों का जन्म हुआ। प्राचीन काल में भारत आर्थिक रूप से बहुत समृद्ध था जिससे यह स्पष्ट है कि लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के अतिरिक्त कला प्रेम और आमोद प्रमोद के लिए समय निकाल सकते थे उच्च वर्ग का सीधे तौर पर दरबारों से संबंधित होने के कारण नाटक, नृत्य और संगीत का आनंद उठा सकते थे और कभी कभार शहर के आम नागरिकों को भी इसका लाभ मिल जाता था परंतु ग्रामीण इलाकों तक इन नाटकों की पंहुच नहीं हो सकी।

ऐसी स्थिति में ग्रामीण सभ्यता में लोगों के पास आमोद प्रमोद के बहुत ही कम साधन उपलब्ध थे लोग खुले में जीवन जीते थे। रात के समय किसी भी आम जगह पर आग जलाकर खाना पकाया जाता तो लोग वहीं एकत्रित हो जाते, वहीं हंसी मजाक चलता रहता, गीत संगीत चलता रहता और ऐसे में कई प्रकार के अभिनय भी होते। यही खुले रंगमंच के प्रारंभिक रूप थे। इन्हें कभी साहित्य के रूप में संजो कर नहीं रखा गया इस लिए इनका कहीं-कहीं उल्लेख मात्र मिलता है, पूर्ण साक्ष्य नहीं।

मध्य काल तक आते-आते यही खुले रंगमंच लोक मंचों का रूप धारण करने लगे। इन मंचों पर क्षेत्रीय प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। इस काल के लोक मंचों में नृत्य और संगीत का भी बहुत प्रयोग किया गया। अनेक क्षेत्रों में आंचलिक लोककथाओं का उदय हुआ जो कालांतर में उस क्षेत्र की पहचान बन गईं जिनमें भवई, जत्रा, पोवाड़ा, वार, नौटंकी, पंडवानी आदि प्रमुख हैं। परंतु पिछली शताब्दी तक आते-आते यह लोक कलाएं भी परिष्कृत हो गई अतः २० सदी में नाटकों के क्षेत्र में नुक्कड़ नाटक एवं पथ नाट्य, खुले रंगमंच के रूप में जनता के समक्ष अवतरित हुए।

इन नुक्कड़ नाटकों में भी वही तत्व होते हैं जो आम नाटकों में होते हैं फिर भी कथानक से लेकर प्रस्तुतीकरण में अपनाई गई तकनीक के कारण नुक्कड़ नाटक खुले रंगमंच में एक विशेष स्थान रखते हैं। खुले रंगमंच में यदि किसी तथ्य के प्रति सबसे अधिक प्रतिबद्धता है तो वह है विषय-वस्तु के प्रति। इनकी कथा वस्तु में शोषित/ पीड़ित वर्ग, रुढ़िवाद का विरोध, भ्रष्टाचार का विरोध, सरकारी व्यवस्था की त्रुटियां, सामाजिक कुरीतियां आदि सम्मिलित रहें हैं। यह ऐसे विषय हैं जिन्हें संभ्रांत नाटकों में कम ही प्रयोग किया जाता है और यदि प्रयोग किया भी गया तो दबी ज़ुबान में। खुले रंगमंच के नाटकों में ऐसे संवेदनशील विषयों को पूरे उत्तरदायित्व के साथ चुना जाता है, उनका सशक्त प्रस्तुतीकरण भी होता है और उन समस्याओं का निवारण खोजने का प्रयास भी किया जाता है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, शोषित वर्ग की समस्याओं को इन खुले रंगमंच में मुख्य कथा वस्तु के रूप में लेकर कथानक उन्हीं के आस पास बुना जाता है।

खुले रंगमंच में पात्र नियोजन भी कथा के अनुरूप ही किया जाता है। अभिजात्य नाटकों के विरुद्ध यहां कथा के नायक का उदात्त होना आवश्यक नहीं है। खुले रंगमंच पर बहुत नामी अभिनेता काम भी नहीं करते। प्रायः इस प्रकार के नुक्कड़ या गली नाटकों में पात्र एवं अभिनेता जनप्रतिनिधि होते हैं। इनमें से बहुत से किसी शिक्षण अथवा सामाजिक संस्थान से होते हैं जिनका एक मात्र लक्ष्य आम जनता को अपनी बात से अवगत कराना होता है।

इस प्रकार के जननाटकों में संवाद एवं भाषा भी कथानक के अनुरूप ही होती है। संवाद बहुत परिष्कृत भाषा में न होकर आम जनता की समझ में आने वाले होते हैं। अत्याधिक दीर्घ / लघु / अधूरे संवाद ऐसे नाटकों में नहीं होते, न ही इनमें बहुत चमत्कार पैदा करने वाली संवाद शैली का प्रयोग होता है वरन् इन खुले नाटकों में तीक्ष्ण, कटाक्षपूर्ण एवं स्पष्ट संवादों को महत्व दिया जाता है। संवादों के अनुरूप भाषा भी सीधी और स्पष्ट ही होती है। इन नाटकों की भाषा में तत्सम या तद्भव शब्दावली के स्थान पर जन शब्दावली (कहीं-कहीं आंचलिक शब्दावली) का प्रयोग किया जाता है। इन नाटकों के दर्शकों के लिए इसी प्रकार की भाषा सर्वथा उपयुक्त है। इन नाटकों की भाषा शैली के कारण ही इन नाटकों का प्रभाव समकालीन और तत्कालीन दोनों ही समयों पर पड़ा है।

इन नाटकों में देश काल और वातावरण भी यथार्थवादी ही होता है क्योंकि प्रायः इन नाटकों में ज्वलंत एवं जटिल विषयों / घटनाओं का चयन किया जाता है। कभी-कभी विषय संवेदनशील होने के कारण लेखक सांकेतिक रूप से स्थान एवं पात्रों के नाम बदल देते हैं फिर भी दर्शकों को उन प्रस्तुतीकरणों के पार्श्व का यथार्थ समझ में आ जाता है। उदाहरणतः १६ दिसंबर २०१२ को नई दिल्ली में घटित निर्भया सामुहिक बलात्कार एवं नृशंस हत्या ने सारे विश्व को हिला कर रख दिया था। उस समय तत्कालीन प्रदेश सरकार का न्याय हेतु सड़कों पर प्रदर्शन कर रहे लोगों के साथ दुर्व्यवहार ने जनता में आक्रोश भर दिया था। इसके पश्चात देश के कई भागों में शैक्षणिक एवं शिक्षणेत्तर संस्थान जिनमें मानवाधिकार संस्थान भी सम्मिलित हैं ने नुक्कड़ नाटक, पथ नाटक एवं स्थानकों पर भी नाटक खेले। इन नाटकों में दो ही मुख्य बातों को सारगर्भित रूप से सामने लाया गया, एक तो घटित अपराध पर पूर्ण न्याय, दूसरे भविष्य में ऐसी घटनाओं के पुनरावर्तन पर पूर्ण रोक और महिला सुरक्षा पर बल। इनमें बहुत से नाटककारों ने स्थान एवं पात्रों के नाम बदल दिए थे

परंतु इससे उनके विषय प्रतिपादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आम जनता ने इन नाटकों को यथार्थ के संदर्भ में ही देखा।

सबसे महत्वपूर्ण है खुले रंगमंच के नाटकों का उद्देश्य। साहित्यिक एवं व्यवसायिक नाटकों में उद्देश्य, कला साधना, सौंदर्य का प्रस्तुतीकरण, साहित्यिक तत्वों का प्रतिपादन आदि होता है, वहीं खुले रंगमंच का उद्देश्य यथार्थ को जनता के समक्ष लाना ही होता है। इन नाटकों को यदि उद्देश्यवादी नाटक भी कहें तो अति कथनी नहीं होगी। नाटक के सभी तत्वों में खुले रंगमंचीय नाटकों में कथानक और उद्देश्य दो ही तत्वों को प्रधानता दी जाती है। नुक्कड़ एवं पथ नाटकों की सफलता का मूल कारण ही उनका उद्देश्य परायण होना है। रंगमंच के दृष्टिकोण से खुले रंगमंच के नाटक सबसे सस्ते और सरल होते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। इन नाटकों के लिए किसी विशेष रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। जब रंगमंच ही विशेष नहीं है तब विशेष मंच-सज्जा, उपकरण (properties), वेशभूषा आदि का भी उतना महत्व नहीं है। किसी भी स्थान पर जहां आम जनता को संबोधित किया जा सकता हो वहां इस प्रकार की नाटक मंडलियां या दल अत्यंत ही सीमित साधनों के साथ अपने नाटकों को सफलता से प्रदर्शित कर लेते हैं।

इतना सरल प्रस्तुतीकरण होने पर भी इन नाटकों की सफलता का क्या रहस्य हो सकता है? आज के दौर में तो इस प्रकार के नाटकों ने आम समाज के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी अपना लोहा मनवा लिया है। आज पाठ्यक्रमों और प्रकल्पों में इन नाटकों को एक अभिन्न अंग के रूप में जोड़ा गया है। इन नाटकों की बाकायदा प्रतियोगिताएं होती है और पुरस्कार भी दिए जाते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण है खुले रंगमंचीय नाटकों में विषय को लेकर लेखकों की प्रतिबद्धता। इस प्रकार के नाटकों के लेखक का उद्देश्य ही जनजागृति है अतः वे पूरी तन्मयता से गंभीर विषयों पर सशक्त कथानक लिखते हैं जिनमें प्रायः व्यवस्था के प्रति विरोध की भावना प्रखर होती है। इनमें सत्ता के प्रति आक्रोश, अव्यवस्था के प्रति रंज, अन्याय का मूल विरोध, पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति असहनशीलता, सांप्रदायिक एवं दकियानूसी विचारधारा के विरुद्ध कटिबद्धता ऐसे कारण हैं जिसके लिए नाटककारों में गहन विचारशीलता और क्रांतिकारी प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है। खुले रंगमंचीय नाटकों का सत्ताधारियों द्वारा विरोध भी किया जाता रहा और कई बार तो सरकारी प्रतिबंध भी लग जाते हैं जैसे नाटक 'बकरी'। कभी-कभी इन नाटकों पर राष्ट्रविरोधी (वास्तव में सत्ता विरोधी) भावनाओं को ठेस पहुंचाने के आरोप लग चुके हैं। परंतु यह इन नाटककारों की गहन विचारधारा, प्रतिबद्धता और हिम्मत का ही परिणाम है कि खुले रंगमंच के नाटक आज केवल लोकप्रिय ही नहीं हैं वरन् आज यह यथार्थवादी जागृति का माध्यम भी हैं। इनके लेखकों को बागी भी कहा जाता रहा है। इन नाटकों में प्रायः व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग भी किया जाता है साथ ही लोक कलाओं के सम्मिश्रण से यह नाटक बहुत ही सजीव और सर्व ग्राह्य हो उठते हैं।

इन नाटकों का कम खर्चीला होना और तड़क भड़क से दूर होना भी इनकी सफलता का एक कारण है। सबसे महत्वपूर्ण है ऐसे नाटकों के दर्शक। पहले तो उन्हें इन नाटकों के लिए, सिवाय कुछ समय के और कुछ नहीं खर्च करना पड़ता। दूसरा सरलता से कहीं भी प्रस्तुत किए जाने के कारण जनमानस का एक बड़ा भाग इन नाटकों का दर्शक है।

खुले रंगमंचीय नाटकों के विकास में कुछ नामों को लिए बिना इनकी चर्चा अधूरी है। इन नाटकों को लोकप्रिय बनाने में सबसे पहला नाम आता है सफदर हाशमी जी का। दिल्ली में जन्मे हाशमी ने अपनी MA(स्नातकोत्तर) की शिक्षा भी दिल्ली से पूर्ण की। हाशमी ने अपने महाविद्यालय काल से नुक्कड़ नाटकों में सक्रिय भाग लिया और समय के साथ ही स्वयं भी एक उत्कृष्ट नाटककार बन गए। हाशमी ने बहुत ही गंभीर विषयों पर नाटक खेले जिन्होंने देश में चल रही अन्याय पूर्ण व्यवस्था और अराजकता की बखिया उधेड़ कर रख दी। देश की जनता में नुक्कड़ नाटकों के प्रति एक अभूतपूर्व उत्साह और समझ उत्पन्न करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। अपने बेबाक और बेधड़क प्रस्तुतीकरण के चलते वे तत्कालीन सत्ताधीशों की आंखों में खटकने लगे थे। इसके बावजूद भी हाशमी ने अपनी नाट्य गतिविधियां जारी रखी। वे स्टुडेंट्स फेडरेशन ऑफ इंडिया (Students Federation Of India) के सक्रिय सदस्य बने रहे। १९७३ में उन्होंने जन नाटक मंडली- JANAM की स्थापना की। इस काल में भारत में बहुत कुछ ऐसा घट रहा था जो चिंता जनक था। आम जनता में मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हो रही थी। मानवाधिकार हनन के मामले देश में तेजी से बढ़ रहे थे। ऐसी स्थिति ने हाशमी के संवेदनशील हृदय को झकझोरा और उन्होंने अपने नुक्कड़ नाटकों द्वारा इन तथ्यों को जमकर प्रदर्शित भी किया। परिणाम स्वरूप १ जनवरी १९८९ को एक नुक्कड़ नाटक के प्रदर्शन के दौरान उन पर जानलेवा हमला हुआ जिसके चलते दूसरे दिन उन्होंने अस्पताल में दम तोड दिया। उनकी मृत्यु के पश्चात भी उनकी पत्नी ने JANAM को जारी रखा। सफदर हाशमी ने अपने प्राणों की आहुति दे कर खुले रंगमंच को एक ऐसा आयाम दिया जो अभूतपूर्व था।

खुले रंगमंच को सफदर साहब ने जिस शिखर पर पहुंचाया उसे वहां बनाए रखने में भी बहुत से लोगों ने योगदान दिया है जिनमें से कुछ नाम उल्लेखनीय हैं, जैसे पंजाबी नुक्कड़ नाटक के प्रणेता गुरशरण सिंघ, हिंदी जगत से असगर वजात, शिवराम, राजेश कुमार, रमेश उपाध्याय, सतीश दुबे, रमेश बख्शी, स्वयं प्रकाश, हरीश भवानी आदि। इनके अतिरिक्त भी आज देश के कोने-कोने में अनेक जाने अनजाने नाटककार जनवादी नाटक और खुले रंगमंच में अपना योगदान दे रहे हैं। आज देश में अनेक संस्थाएं स्थापित हो चुकी हैं जो इस रंगमंच को और समृद्ध बना रही हैं। इनमें से प्रमुख हैं:-

१) जन नाट्य मंच दिल्ली

२) दिशा (जन सांस्कृतिक मंच):- बिहार

३) निशांत नाट्य मंच

४) रंगभारती, बीकानेर

५) जनवादी रंगमंच चंडीगढ़

६) रंगकर्मी, आगरा

७) हस्ताक्षर, रायपुर

'सिलसिला', 'अंवतिका', 'रचना', 'विवेचना', 'जन नाट्य संघ', 'जनवादी कला एवं विचार मंच', 'सर्जना', 'अनागत', कला संगम', 'रंगमंच' आदि।

इन सबके अतिरिक्त हिंदी नाट्य जगत के खुले रंगमंच में इप्टा की भूमिका भी प्रशंसनीय है जिसका उल्लेख पहले ही किया जाता चुका है। अतः संक्षेप में रंगमंच के इतिहास के अध्ययन करने से छात्रों को रंगमंच का पार्श्व समझने में सहायता मिलेगी।

२.५ रंगमंच का तकनीकी विमर्श

नाट्य लेखन एक कला है तो रंगमंच पर प्रस्तुतिकरण एक तकनीक। किसी भी सफल नाटक में कला और तकनीक का संगम अति आवश्यक है। साहित्य सृजन हेतु लिखे गए नाटकों में मंचन के समय रंगमंच की आवश्यकतानुसार अनिवार्य है अन्यथा साहित्यिक कृति कभी भी नाटक में रुपांतरित नहीं हो सकती। प्राचीन काल से नाटक के मंचन हेतु अनेक मागदर्शन दिए जाते रहे हैं और यह सभी रंगमंच से संबंधित होते हैं। हिंदी नाटकों में तो विशेष रूप से लेखक कोष्ठक में रंगमंच हेतु परामर्श देते हैं जिनका अनुसरण निर्देशक मंचन के समय करते हैं और नाटक को सजीवता प्रदान करते हैं। हिंदी नाटक के आरंभिक काल से ही नई तकनीकों का यथावत प्रयोग होता रहा है। पारसी रंगमंचों से लेकर खुले रंगमंचों के दौर तक हिंदी नाटकों में अनेक प्रकार की तकनीकों को अपनाया गया। तकनीक का अर्थ केवल रंगमंच के उपकरण मात्र नहीं हैं, तकनीक का वास्तविक अर्थ है शैली/ पद्धति जिसके द्वारा कोई काम सुव्यवस्थित किया जा सके। रंगमंच के तकनीकी विमर्श में हम दो मुख्य धाराओं पर विचार करेंगे।

१) रंगमंच का दल

२) रंगमंच के घटक

२.५.१ रंगमंच का दल:

प्राचीन काल से नाटक प्रस्तुत करने वालों की मंडलियां या दल होते रहे हैं जिनमें अपनी-अपनी प्रतिभा अनुसार हर व्यक्ति नाटक में अपना योगदान देता है। पाश्चात्य जगत में भी इन्हें Theatre groups या Theatre contingent आदि के नामों से संबोधित किया जाता है। दर्शक मंच पर केवल अभिनेता को ही मंच पर देखता है अतः दर्शक के दृष्टिकोण में अभिनेता ही नाटक दल के सबसे प्रमुख घटक हैं। जबकि अभिनेता की भूमिका से ऊपर, समकक्ष और नीचे भी ऐसी भूमिकाएं हैं जिनके सम्मिलित प्रयासों से ही कोई भी नाटक रंगमंच पर अवतरित होता है। अतः नाटक के इन सदस्यों की भूमिका को भी तकनीकी रूप से समझना आवश्यक है।

साहित्य लेखन दल (writing crew):

नाट्य साहित्य लिखने के लिए एक व्यक्ति काफी है। वास्तव में नाटक जब तक लिखित रूप में है तब तक केवल लेखक ही उनका सृजनकर्ता है, परंतु जब उसी नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करना हो तब केवल एक लिखित प्रति के स्थान पर पटकथा और संवाद का पूर्ण नियोजन आवश्यक है क्योंकि लिखित प्रति को पढ़ते समय पाठक अपनी परिकल्पना का

प्रयोग करते हुए नाटक के चित्र को मन में उकेरता है जबकि रंगमंच पर प्रस्तुत नाटक में यह कार्य पाठक के स्थान पर स्वयं लेखक या निर्देशक को करना होता है। इस लिए लिखित नाटक के बावजूद प्रस्तुत करते समय लिखित स्वरूप को मंचनीय बनाना आवश्यक है। यह स्वयं नाटक का लेखक भी कर सकता है या उसके साथ अन्य लोगों का सहयोग भी ले सकता है। व्यवसायिक नाटकों में प्रायः लेखक या लेखन दल की भूमिका को गंभीरता से लिया जाता है। कभी-कभी नाटक में अलग-अलग अंक / प्रकरण पृथक लेखकों से लिखवाए जाते हैं। जैसे किसी भी व्यवसायिक नाटक में दर्शकों के मनोरंजन हेतु कई तथ्य डाले जाते हैं:- त्रासदी, हास्य, नृत्य, संगीत आदि। इस संदर्भ में मुख्य पटकथा एक ही लेखक की होने पर भी जिन प्रसंगों में उपरोक्त तत्वों का प्रयोग किया जाता है उनमें उन तत्वों के विशेषज्ञों से भी सहायता ली जाती है जिससे नाटक का प्रत्येक अंग अपनी विशेषता के साथ दर्शकों को आकर्षित कर सके।

खुले रंगमंच या जनवादी नाटकों में प्रायः

पटकथा और संवाद लेखक एक ही होता है क्योंकि यहां मनोरंजन प्रधान न होकर उद्देश्य प्रधान है। परंतु समकालीन दौर में इन नाटकों के लेखन में भी एक से अधिक लेखकों का समावेश होने लगा है। कभी-कभी तो नाटक के पात्र भी अपने हिस्से के संवाद स्वयं लिखते हैं और अंततः नाटककार उनका सन्नियोजन करके एक ही प्रति बनाता है। शिक्षण और सामाजिक क्षेत्र के नाटकों में अब यह चलन बढ़ने लगा है। अतः यह स्पष्ट है कि किसी भी नाटक को रंगमंच पर लाने हेतु प्रथम चरण ही लेखन है। तकनीकी दृष्टि से यदि प्रथम चरण सफल है तो नाटक की सफलता भी कहीं न कहीं निश्चित हो ही जाती है।

निर्माता (producer):

नाट्य साहित्य का निर्माता स्वयं लेखक ही होता है परंतु रंगमंच पर उसके प्रस्तुतीकरण हेतु निर्माता एक तकनीकी तथ्य है जिसे समझना आवश्यक है। व्यवसायिक नाटकों में प्रायः रंगमंच का मालिक (owner) ही निर्माता होता है। पारसी नाटकों के मंचन काल में तो यही प्रथा रही है। रंगमंच का मालिक ही दर्शकों को ध्यान में रखकर लिखित नाटक का चयन करता था या अपनी आवश्यकतानुसार लिखवाता था। अतः साहित्यिक लेखक और मंच लेखक का अंतर यहां स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो जाता है। साहित्यिक नाटकों में कुछेक बार स्वयं लेखक ही निर्माता होता है अतः यहां लेखक और निर्माता का एकीकरण हो जाता है। अव्यवसायिक नाटकों में इस पक्ष को लेकर अधिक गंभीरता दिखाई नहीं देती। परंतु व्यवसायिक नाटकों का सीधा संबंध खर्च से भी है अतः आधिकारिक रूप से निर्माता का होना अनिवार्य है जो कि नाटक के सारे लाभ-हानि एवं सफलता-असफलता का उत्तरदाई है। आधुनिक दौर में नाटक के निर्माता के संबंध में विशेष अनुबंध (contract) भी बनाए जाते हैं।

खुले रंगमंच के निर्माता व, प्रस्तुतकर्ता और लेखक प्रायः

एक ही होते हैं। इन नाटकों का ध्येय धन अर्जन अथवा व्यवसायिक लाभ न होकर जनजागृति है अतः यहां लाभ और हानि के उत्तरदायित्व का विशेष प्रश्न ही नहीं है। फिर भी श्रेय हेतु ही सही इन नाटकों में भी निर्माता का निर्धारण होने लगा है। अतः जैसे बिना लेखक

के नाटक का अस्तित्व संभव नहीं है वैसे ही बिना निर्माता के नाटक की प्रस्तुति संभव नहीं है।

प्रायोजक (sponsor):

प्रायोजक उस व्यक्ति को कहते हैं जो नाटक का सारा खर्च वहन करता है। आम नाटकों में तो प्रायः निर्माता ही प्रायोजक होते हैं परंतु व्यवसायिक और उच्च स्तरीय नाटकों में निर्माता के अतिरिक्त कोई धनवान व्यक्ति अथवा निवेशक दल (financial investor) इस खर्चे का उत्तरदायी होता है। प्राचीन काल में ऐसी प्रथाएँ रही थीं। उच्चस्तरीय नाटकों को राज्याश्रय अथवा नगरसेठ द्वारा ही प्रायोजित कर दिया जाता था। भ्रमण नाट्य पथकों को भी उस काल में कई व्यापारी मंडल आदि प्रायोजित किया करते जिससे वे भी अच्छा खासा धन लाभ कमा लेते थे। मध्य काल में नाटक विधा को बहुत संबल नही मिला परंतु आधुनिक काल में हिंदी नाटकों के अनेक प्रायोजक रहे हैं और यह व्यवस्था अभी भी चल रही है। प्रायोजक के साथ अनुबंध होने से निर्माता पर पड़ने वाला भार कुछ कम हो जाता है।

निर्देशक (Director):

नाटक जिसके परामर्श अथवा इशारों पर मूर्तिमान होता है वह व्यक्ति है निर्देशक। नाट्य साहित्य को दृश्य-श्रव्य माध्यम तक लाना ही निर्देशक का मुख्य कार्य है। नाटककार केवल कथानक प्रस्तुत करता है, वह निर्देशक ही है जो अपनी कल्पना शक्ति को कथानक पर आरोपित कर उसका प्रत्यक्ष रूप, एक मूर्तिमान स्वरूप दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। नाटक के कथानक के पात्रों के अनुरूप अभिनेताओं का चयन (casting) करता है संवाद योजना के प्रतिपादन हेतु यथावत् संवाद अथवा परिवर्तित संवाद अभिनेता से बुलवाता है। मंच पर अभिनेताओं के खड़े होने का स्थान, आने-जाने का नियोजन, अभिनेताओं का परिधान एवं शृंगार (makeup), मंच की साज-सज्जा, नाटक की गति, नाटक की कुल अवधि आदि सभी का निर्धारण, निर्देशक द्वारा ही किया जाता है। निर्देशक अपने साथ सह-निर्देशक, संगीत-निर्देशक, नृत्य-निर्देशक, तंत्र-निर्देशक आदि का भी सहयोग ले सकता है परंतु अंतिम निर्णय निर्देशक ही लेता है। कहीं-कहीं नाटक का निर्माता और निर्देशक दोनों एक ही व्यक्ति होते हैं। परंतु उच्च स्तरीय नाटकों में कार्य विभाजन, कार्य कुशलता को निश्चित करता है। अतः फिल्मों की ही भांति नाटक का मुख्य सूत्रधार वास्तव में निर्देशक ही होता है।

अभिनेता (actors):

नाटक के कथानक को लेखक पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है और इन्हीं पात्रों की भूमिका मंच पर अभिनेता करते हैं। दर्शकों के लिए अभिनेता ही नाटक को समझने का माध्यम होते हैं। आम दर्शक तो नाटक में लेखक और निर्देशक की भूमिका समझ ही नहीं पाता, उसके लिए अभिनेता ही वास्तव में नाटक का प्रस्तुतकर्ता होता है। परंतु रंगमंच को अच्छी तरह समझने वाले भी, नाटक में अभिनेता के महत्व को भली-भांति समझते हैं। इसलिए यह निर्देशक के लिए भी एक अहम कार्य है कि वह किसी भी नाटक में पात्रों के अनुकूल अभिनेताओं का चयन (casting) करे। सही चयन और अभिनय, पात्रों की भूमिका को बड़ी सफलता से दर्शकों तक पहुंचा सकता है वहीं अनुचित अभिनेता चयन अथवा

त्रुटिपूर्ण अभिनय पात्रों के साथ न्याय नहीं कर सकता। अभिनेताओं को स्वयं भी अपनी ओर से नाटक के कथानक को पूर्ण रूप से आत्मसात करना चाहिए। अभिनेता नाटक के प्राण हैं अतः नाटककार को अभिनेताओं के साथ संजीदगी से ही नाटक को प्रस्तुत करना चाहिए जिससे नाटक की सफलता सुनिश्चित हो सके।

मंच सज्जाकार (stage decorators):

चूंकि नाटक रंगमंच पर खेला जाता है, अतः मंच की साज-सज्जा भी नाटक का एक महत्वपूर्ण अंग है। साज-सज्जा का अर्थ है नाटक के दृश्यानुसार मंच को तैयार करना। उदाहरणतः- यदि प्रसाद के नाटक चंद्रगुप्त अथवा ध्रुवस्वामिनी का मंचन करना हो तो महल के अंत:कक्ष के अनुरूप पीछे पर्दे पर दृश्य, मंच पर आसन और अन्य साज-सज्जा आवश्यक है। यदि राम की शक्ति पूजा का दृश्य निर्माण करना हो तो पीछे पर्दे पर सागर तट का दृश्य और रंगमंच पर रेत पत्थर आदि से काम चल सकता है। मंच सज्जा नाटक के दृश्यों के अनुरूप ही होनी चाहिए। खुले रंगमंच वाले नाटकों में इतनी साज-सज्जा की आवश्यकता नहीं होती, वहां केवल उद्देश्य पूर्ती हेतु ही सामान जुटाया जाता है परंतु क्लासिक एवं व्यवसायिक नाटकों में साज-सज्जा का अपना एक आकर्षण होता है। अतः इसके लिए विशेष रूप से मंच सज्जाकार नियुक्त किया जाता है जो निर्देशक की मांग के अनुरूप मंच तैयार करता है। आधुनिक काल में डिजिटल उपकरणों की सहायता से यह कार्य और आसान हो गया है। पार्श्व में प्रस्तुत पर्दे के दृश्य अब प्रोजेक्शन (projection) के माध्यम से चलायमान होने लगे हैं जो अधिक प्रभावी लगते हैं। अतः आधुनिक नाटकों में भी मंच सज्जाकार की भूमिका महत्वपूर्ण है।

वेशभूषा एवं श्रृंगार (costumes and makeup):

किसी भी नाटक में अभिनेताओं का पात्रों के अनुकूल वेशभूषा धारण करना और उन्हीं के अनुरूप श्रृंगार करना आवश्यक है। प्रत्येक नाटक में पात्रों की वेशभूषा कथानक के स्थान और काल के साथ मेल खानी चाहिए। खुले रंगमंच पर साधारण वेशभूषा द्वारा भी काम चल जाता है। इन नाटकों में कई बार एक ही अभिनेता कई भूमिकाएं अदा करता है, अतः वहां बार-बार वेशभूषा और शृंगार बदलना संभव नहीं है। परंतु उच्च स्तर के नाटकों में, विशेष रूप से व्यवसायिक नाटकों में वेशभूषा और शृंगार का विशेष स्थान है। पारसी रंगमंच के समय से ही अभिनेताओं के परिधान हेतु विशेष वेशभूषाकार रखे जाते रहे हैं। कई नाटक मंडलियों के तो अपने परिधान भंडार (costume store) भी होते हैं। छोटी मंडलियां इन्हें किराए पर भी ले लेती हैं। रामलीला आदि की नाटक मंडलियों के पास तो पक्के तौर पर उनके परिधान होते ही हैं। इन्हीं के साथ श्रृंगार को ध्यान में रखते हुए निर्देशक श्रृंगार कर्ता (makeup artist) की नियुक्ति करते हैं। सही वेशभूषा और शृंगार किसी भी नाटक में पात्रों को सजीव बना देते हैं।

२.६ तंत्र निदेशक दल (TECHNICAL DIRECTOR)

विशेष रूप से तंत्र निर्देशक दल का प्रयोग पाश्चात्य नाट्य प्रस्तुतिकरण की देन है। भारत में पहले यह कार्य निर्देशक अथवा सह निर्देशक किया करते थे परंतु रंगमंच के विकास और लोकप्रियता के बढने से वर्तमान काल में तंत्र निर्देशन एक परिष्कृत व्यक्ति अथवा दल द्वारा

किया जाता है। तंत्र निर्देशक का काम मंच पर उपलब्ध सभी घटकों का सही नियोजन एवं संचालन करना होता है। मंच पर प्रकाश, ध्वनि, सामान, पर्दा आदि कब चाहिए, कहाँ चाहिए, कितना चाहिए आदि का निर्णय तंत्र-निर्देशक ही लेता है। आजकल के दौर में तंत्र-निर्देशक की विशेष रूप से शिक्षा (training) भी दी जाती है। खुले रंगमंच में तंत्र-निर्देशक इतना महत्वपूर्ण नही है परंतु व्यवसायिक रंगमंच में तंत्र-निर्देशक नाटक के प्रस्तुतिकरण को प्रभावी और सफल बनाता है।

१) संगीत और नृत्य निर्देशक (Music director and Choreographer):

नाटकों में कभी-कभी नृत्य की भी आवश्यकता पड़ती है और प्रत्यक्ष और पार्श्व में भी संगीत की भी आवश्यकता पड़ती है। पुराने नाटकों में संगीत दल, मंच के पार्श्व में बैठकर संगीत दिया करते थे। नृत्य आदि तो सीधे तौर पर मंच पर किया जाता था। आधुनिक काल में संगीत को रेकॉर्डिंग के माध्यम से प्रयोग किया जाता है। अब विशेष रूप से नाटकों में संगीत एवं नृत्य निर्देशक को नियुक्त किया जाता है जिससे संगीत और नृत्य को नाटक में सही तरह से प्रस्तुत किया जा सके। इससे नाटक अधिक प्रभावी बनता है।

नाटकों में प्रत्येक विशेष कार्य के लिए विशेष रूप से सभी घटकों की आवश्यकता पड़ती है जिनका उल्लेख उपरोक्त विवेचन में किया गया है। सभी के यथोचित समावेश से नाटक की प्रस्तुति सफल हो सकती है

२) रंगमंच के घटक:

रंगमंच विमर्श के अंतिम भाग में रंगमंच के विभिन्न घटकों को भी संक्षेप में समझ लेना आवश्यक है। रंगमंच के घटकों में उन तत्वों का समावेश है जिनको मिलाकर ही किसी भी रंगमंच पर नाटक या किसी भी दृश्य-श्रव्य विधा की प्रस्तुति संभव है।

फलक (stage):

फलक किसी भी रंगमंच का सबसे अभिन्न अंग है जिसके बिना नाटक का खेला जाना संभव ही नहीं है। प्राचीन काल से नाटकों के मंचन हेतु विशेष रूप से फलक तैयार किए जाते रहे हैं। राजा महाराजाओं के काल में विशेष रंगमहल आदि की भी सुविधा होती थी, जहां फलक कथानक और निर्देशक की आवश्यकता के अनुरूप बनाया जाता था। मध्यकाल में नाटकों का प्रचलन काफी कम हो गया था अतः इस दौर में रंगमंचों के संबंध में कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता परंतु हिंदी नाटकों के उदय काल से ही बंबई जैसे महानगरों में स्थायी रंगमंचों का निर्माण हुआ। पारसी रंगमंच, पृथ्वी थियेटर और इप्टा जैसे दलों ने भव्य रंगमंचों और विस्तृत फलकों का निर्माण किया। खुले रंगमंच के दौर में भी बेशक अन्य सामग्रियों की आवश्यकता घट गई हो परंतु फलक, चाहे वह जमीन का टुकड़ा ही क्यों न हो, की आवश्यकता तो पड़ती ही है।

नाटक के कथानक के अनुरूप फलक का क्षेत्र चुना जाता है। परंतु बड़े महानगरों में ऐसे फलक स्थायी रूप से तैयार होते हैं अतः नाटक के कार्यकलापों को प्राप्त फलक के अनुसार परिवर्तित कर लिया जाता है। कम पात्रों वाले नाटकों को छोटे छोटे रंगमंचों पर खेला जाता

है वहीं बड़े नाटकों के लिए विस्तृत फलक की आवश्यकता पड़ती है। फलक का फर्श पुरे नाटक के दौरान अनुकूल होना चाहिए।

पर्दे (curtain):

मंच पर प्रायः पर्दे अग्रभाग पर स्थित होते हैं जिन्हें नाटक के आरंभ में उठाया जाता है। लंबे नाटकों में दृश्य बदलते समय भी उठाए और गिराए जाते हैं। अति उच्च स्तर के नाटकों के मंचों पर तो पर्दों के कई स्तर (ऊंचाई के हिसाब से) और कई परतें (आगे पीछे के हिसाब से) होते हैं। दृश्यों के अनुसार निर्देशक, तंत्र निर्देशन दल के साथ इस बात का निर्णय करता है कि कब, कौन सा पर्दा कहां से उठेगा या गिरेगा। कभी-कभी एक दृश्य पहले और दूसरे पर्दे के दरम्यान चलता है जबकि दूसरे पर्दे के पीछे अगला दृश्य तैयार रहता है। नाटक चलने के दौरान भी पड़े हुए पर्दों के पीछे कई फेरबदल कर अगला दृश्य तैयार कर लिया जाता है। पर्दा गिराना और पर्दा उठाना नाटक का इतना अभिन्न और महत्वपूर्ण कार्य है कि इसे अब आम जनजीवन में भी एक मुहावरे की भांति प्रयोग किया जाता है। नाटक में यदि सूत्रधार है तो वह भी पर्दे के आगे से ही दर्शकों का ध्यान आकर्षित करता है जबकि पर्दे के पीछे से अन्य कार्यकलाप दर्शकों की आंखों से ओझल चलते रहते हैं।

नेपथ्य और विंग्स:

मंच के पार्श्व भाग को नेपथ्य (background) कहते हैं और मंच के दोनों ओर या एक ओर समानांतर छोटे मार्ग जिनसे अभिनेता मंच पर आते हैं, को विंग्स कहते हैं। नेपथ्य और विंग्स का काम नाटक के दौरान आवागमन सुनिश्चित करना है और साथ ही अगले दृश्य के लिए अभिनेताओं व सामग्री को तैयार रखना है। नाटक में चलंत दृश्य को छोड़ कर अन्य दृश्यों का सामान विंग्स में ही रखा जाता है जिससे अगले दृश्य में उसे जुटाने में आसानी हो सके। विंग्स में रहकर ही निर्देशक एवं सह-निर्देशक समय-समय पर पर नाटक का संचालन करते हैं। विंग्स के साथ एक समस्या यह है कि बिलकुल कोने में बैठे दर्शकों को विपरीत ओर के विंग्स की गतिविधियां दिखाई देती हैं, इस लिए यदि वहां कोई हलचल या तांक झांक हो रही हो तो इससे नाटक में बाधा पड़ सकती है। अतः विंग्स और नेपथ्य को सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए।

माइक्स (mikes):

आधुनिक नाटकों में माइक एक महत्वपूर्ण साधन है। जहां सैंकड़ों की संख्या में दर्शक नाटक देखने बैठते हैं वहां केवल मौखिक संवाद सुनाई ही नहीं दे सकते। प्राचीन काल में जब माइक्स का आविष्कार नहीं हुआ था तब रंगमंच दर्शकों तक आवाज पंहुचाने के लिए गोलाकार अथवा अर्ध गोलाकार बनाए जाते थे। पाश्चात्य रंगमंच एक ओर ही होता है और दर्शक एक लंबी दीर्घा में बैठेते हैं, ऐसी स्थिति में संवादों की आवाज उन तक पहुंचाने के लिए माइक्स का प्रयोग किया जाता है। माइक्स भी कई प्रकार के होते हैं,

जैसे:

१) मंच के अग्रभाग में काफी माइक्स एक कतार में रखकर प्रयोग किए जाते हैं। इस स्थिति में अभिनेता अपने संवाद अनुरूप आगे-पीछे होकर संवाद बोलते हैं।

२) माइक्स को रंगमंच की छत से पूरे रंगमंच के विस्तार में लटकाया जाता है जिन्हें रंगमंच के आगे झूलते पर्दे से ढंका जाता है। यहां अभिनेता थोड़ा ज़ोर से बोलते हैं जिससे माइक्स इन आवाजों को पकड़ लेते हैं और प्रसारित करते हैं।

३) कई रंगमंचों पर भ्रमण (mobile, with wire or wireless) माइकों का प्रयोग किया जाता है। ऐसा माइकों की संख्या कम होने के कारण होता है। यहां अभिनेता बारी बारी माइक हाथ में लेकर संवाद बोलते हैं।

४) आज के अत्याधुनिक काल में मंहगे व्यवसायिक नाटकों में कॉलर माइक्स (collar mikes) का प्रयोग किया जाता है।

अनेक प्रकार के माइक रंगमंच पर नाटकों में संवाद प्रस्तुति की गुणवत्ता को निखार कर नाटक को सफल बनाते हैं।

प्रकाश (lights):

प्रकाश भी रंगमंच का एक अति आवश्यक घटक है। नाटक की आवश्यकता के अनुसार मंच पर प्रकाश की व्यवस्था की जाती है। पूरे रंगमंच को प्रकाशित रखने हेतु बड़ी लाइट्स स्थायी तौर पर रंगमंच पर स्थित होती है और नाटक के दौरान दर्शक दीर्घा में प्रायः मद्धिम प्रकाश रखा जाता है जिससे मंच पर होने वाली प्रस्तुति स्पष्ट दिखाई दे सके। आधुनिक नाटकों में पाक्षिक प्रकाश (partial lights), केंद्रीय प्रकाश (focus lights) और रंग बिरंगी प्रकाश का प्रयोग होता है। नाटकों के प्रस्तुतीकरण में सही प्रकाश उसे प्रभावशाली बनाता है।

क्रेन (crane):

मंच पर भारी सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने हेतु आधुनिक काल में विशेष उपकरण 'क्रेन' का प्रयोग किया जाता है। परंतु अब क्रेन का काम केवल सामान उठाना भर नहीं रह गया है। अब नाटकों में आवश्यकतानुसार क्रेन द्वारा अभिनेताओं को भी रंगमंच पर अवतरण एवं स्थानांतरण किया जाता है। ऐसा नाटकों में विशेष प्रभाव (special effects) उत्पन्न करने हेतु किया जाता है जैसे रामलीला में हनुमान द्वारा संजीवनी के लिए पहाड़ उठाने का दृश्य हो या देवताओं द्वारा पुष्प वर्षा का दृश्य। अतः नाटकों में अब क्रेन भी रंगमंच का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई है।

शृंगार कक्ष (dressing room / green room/ makeup room):

नाटक में अभिनेताओं के तैयार होने हेतु विशेष कक्ष की आवश्यकता पड़ती है। स्त्री और पुरुष अभिनेताओं के लिए प्रायः पृथक कक्षों की व्यवस्था की जाती है। एक आम अभिनेता का पात्रों में ढलना इन्हीं कमरों में होता है। कई शृंगार कक्षों में आराम कक्ष (rest room) भी होता है। प्रायः लंबे नाटकों या रिहर्सल के बाद अभिनेता यहीं प्रतीक्षा करते हैं। कई नाटकों में एक ही अभिनेता कई भूमिकाएं भी निभाता है, ऐसे में मेकअप रूम का प्रयोग लगातार होता रहता है। इन कमरों में साफ पानी, शौचालय के साथ ही सही पर्दे आदि का भी

समावेश होना चाहिए विशेष रूप से महिलाओं के शृंगार कक्ष में, जिससे सभी अभिनेता बिना किसी अप्रिय घटना के नाटक के लिए तैयार हो सकें।

इसके अतिरिक्त मंच पर प्रयुक्त नाट्य सामग्री (properties) आदि और अन्य छुटपुट सामान भी रंगमंच का ही घटक है। यदि नाटक के सारे घटकों का यथोचित प्रयोग किया जाए तो कोई भी नाटक प्रभावी बन सकता है।

२.७ सारांश

इस अंक में हमने हिंदी नाटक के उद्भव और विकास के साथ-साथ हिंदी रंगमंच के विषय में भी विमर्श किया है। पारसी नाटक मंडली, इंडियन पीपुल्स थियेटर (IPTA), पृथ्वी थियेटर और खुले रंगमंच (नुक्कड़ नाटक) आदि के उद्भव एवं विकास और हिंदी नाट्य जगत को उनके बहुमूल्य योगदान को भी इस भाग में सुक्ष्मता से समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय के परवर्ती भाग में रंगमंच के तकनीकी पक्ष पर विचार विमर्श किया गया है। नाटकों को प्रस्तुत करने हेतु नाट्य दल में लेखक, निर्माता, निर्देशक, प्रायोजक, अभिनेता, नृत्य-निर्देशक, तंत्र-निर्देशक, वेशभूषा कर्ता, श्रृंगार करने वाले और अन्य सदस्यों की रंगमंच में भूमिका पर गहनता से विचार किया गया है। अंत में रंगमंच के लिए प्रयुक्त सामग्रीगत् घटक जैसे फलक, पर्दा, नेपथ्य, विंग्स, माइक, प्रकाश, क्रेन आदि की विशेष भूमिका पर भी चर्चा की गई है। अगले अध्याय में नाटक के तत्व और विशेषताओं पर चर्चा की जाएगी। नाटक के विभिन्न पक्षों पर सोदाहरण चर्चा से छात्रों को नाटक के संबंध में विशेष अध्ययन में सहायता मिलेगी।

२.८ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

१) हिंदी नाटक और रंगमंच में पारसी नाटक मंडलियों के योगदान पर प्रकाश डालिए।

२) हिंदी नाटक और रंगमंच को इंडियन पीपुल्स थियेटर (IPTA) की देन पर चर्चा कीजिए।

३) हिंदी नाटक और रंगमंच में पृथ्वी थियेटर के योगदान को अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए।

४) हिंदी नाटक परंपरा में खुले रंगमंच के दौर और योगदान पर चर्चा कीजिए।

५) हिंदी रंगमंच के विभिन्न सहयोगी दलों की नाटक में भूमिका पर आलेख लिखिए।

६) रंगमंच के विभिन्न घटकों पर प्रकाश डालिए।

२.९ टिप्पणियां

१) पारसी नाटक

२) नुक्कड़ नाटक

३) सफदर हाशमी की खुले रंगमंच को देन

४) पृथ्वी थियेटर का सफर

५) इप्टा (IPTA) के जनवादी नाटक

६) रंगमंच पर निर्देशक की भूमिका

७) रंगमंच पर अभिनेताओं की भूमिका

*****

३

नाटक के तत्व, विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

३.० इकाई का उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ नाटक के तत्व

३.२.१ कथावस्तु/ कथानक /तथ्य/ कथ्य

३.२.२ पात्र /चरित्र चित्रण

३.२.३ संवाद/कथोपकथन

३.२.४ भाषा शैली

३.२.५ देश काल और वातावरण

३.२.६ उद्देश्य

३.२.७ संकलनत्र/रंगमंचियता/ प्रस्तुतीकरण

३.३ नाटक की विशेषताएं

३.४ सारांश

३.५ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

३.६ टिप्पणियां

३.० इकाई का उद्देश्य

- विद्यार्थियों में नाटक के तत्वों की जानकारी
- विद्यार्थियों में नाटक की विशेषताओं की जानकारी
- विद्यार्थियों में नाटक के तत्वों के आधार पर नाटक की समझ विकसित।

३.१ प्रस्तावना

तत्व का अर्थ होता है मूल भाव। साहित्य के संदर्भ में इस शब्द को केंद्रिय भाव, बीज मूल्य, मुख्य धरातल आदि के अर्थों में लिया जाता है। कोई भी साहित्यिक रचना बिना तत्वों के संभव ही नही है।तत्व ही रचना की देह और प्राण हैं। नाटक, साहित्य की वह विधा है जो दृश्य-श्रव्य माध्यम से कथा साहित्य का प्रस्तुतिकरण है। अतः नाटक के तत्व अन्य साहित्यिक विधाओं के तत्वों के साथ रंगमंचीयता के गुणों को भी समाविष्ट करते हैं। प्राचीन काल से अब तक नाटक के तत्वों पर बहुत व्यापक रूप से विचार किया गया। अनेक विद्वानों ने अपनी पुस्तकों एवं संगोष्ठियों में नाटक के तत्वों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। ऐसे

विचार हमें काव्यशास्त्र के साहित्य से लेकर पृथक नाट्य संबंधी साहित्य के अंतर्गत, भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही साहित्यों में प्राप्त होते हैं।

३.२ नाटक के तत्व

भारतीय नाट्य चिंतन धारा बहुत हद तक भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से प्रभावित रही है। वहीं पाश्चात्य नाट्य चिंतन पर अरस्तु का प्रभाव सर्वविदित है। किसी ने नाटक के पाँच तत्व माने तो कोई इन्हें नौ तक मानता है। सभी विद्वानों के अभिमतों को एकसूत्र में बांधकर यहाँ नाटक के सात प्रमुख तत्वों को स्वीकार करते हुए इन्हीं पर विचार करेंगे।

नाटक के प्रमुख तत्व हैं:

१) कथावस्तु /कथानक/ तथ्य/ कथ्य

२) पात्र/चरित्र चित्रण

३) संवाद/कथोपकथन

४) भाषा शैली

५) देश काल और वातावरण

६) उद्देश्य

७) संकलनत्र /रंगमंचीयता /प्रस्तुतिकरण

नाटक के इन तत्वों को सैद्धांतिक रूप के साथ-साथ यहाँ व्यवहारिक रुप से भी समझने का प्रयास किया जाएगा। अतः यहाँ कुछ प्रचलित आधुनिक नाटकों का उदाहरण स्वरूप प्रयोग किया जाएगा। यह नाटक हैं

१) काला पत्थर (२०२१) - डॉ सुरेश शुक्ल 'चंद्र'

(कला तृतीय वर्ष, पंचम सत्र के पाठ्यक्रम में सम्मिलित)

२) अंधायुग (१९५५) - धर्मवीर भारती

३) मुआवजे (१९९३) - भीष्म साहन

४) खजुराहो का शिल्पी (२००५) - शंकर शेष

५) आठवाँ सर्ग (१९७६) - सुरेंद्र वर्मा

६) कोणार्क - जगदीशचंद्र माथुर

यह सभी नाटक अत्यंत प्रचलित एवं पठित नाटक हैं जिनका अनेकों बार मंचन हो चुका है। प्रायः यह सभी नाटक स्नातक या परास्नातक के पाठ्यक्रम में किसी न किसी विश्वविद्यालय

में अवश्य ही पठन-पाठन का भाग रहे हैं। सैद्धांतिक पक्षों को उदाहरणों के माध्यम से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

३.२.१ कथावस्तु / कथानक / तथ्य / कथ्य:

कथावस्तु वह मुख्य प्रतिपाद्य विषय है जिसके संबंध में लेखक किसी कथा को कहना चाहता है। यदि कथानक नहीं तो कोई भी कथा साहित्य निरर्थक है। लेखक किसी भी कथा साहित्य को लिखने के पूर्व पहले कथानक का चयन करता है फिर अन्य तत्वों का। कभ-कभी लेखक के पास सशक्त कथानक (concept) होता है जिसके लिए वह विधा (कहानी, उपन्यास, नाटक आदि) का चयन करता है। कथानक के चयन के पश्चात ही पात्र देश-काल, संवाद एवं भाषा का चयन होता है। सशक्त और प्रभावी कथानक किसी भी नाटक का प्राण हैं। अच्छे कथानकों पर लिखे नाटक यदि कहीं अन्य तत्वों या रंगमंचन में कम भी पड़ जाए तो कथानक के कारण पाठकों एवं दर्शकों को पसंद आ ही जाते हैं। नाट्य साहित्य में रंगमंचन की अनिवार्यता नहीं होती वहाँ तो कथानक का सशक्त होना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

संस्कृत के नाटकों के काल से ही कथानक के कई चरण माने जाते रहे हैं। आचार्य भरतमुनि से लेकर आधुनिक काल के नाट्याचार्यो ने तीन से लेकर बारह चरणों में नाटकों को विभाजित किया है। शास्त्रीय नाटकों में इन पड़ावों का विधिवत अनुसरण भी होता रहा है। परंतु हिंदी नाटक आधुनिक काल की विधा है अतः अब उन पड़ावों को सरल रूप में ही देखा जाता है जो अधिक सहज है। नाटकों के आम चरणों में, आरंभ (परिचय), चरित्र-चित्रण, समस्या निरूपण, संघर्ष एवं फलागम। अंत में फल प्राप्तकर्ता को ही कथानक का नायक माना जाता रहा है। परंतु अब इस रूढि का इतना अधिक पालन नहीं होता। नाटक के चरण आज सहज हैं न कि परंपरागत।

कथानकों के भी कई प्रकार होते हैं। इनकी मुख्य दो धाराएँ हैं। सरल और कठिन/जटिल। मनोरंजन हेतु लिखे गए नाटकों के कथानक प्रायः सरल ही होते हैं। हास्य नाटकों में कथानक प्रायः सरल ही होते हैं उसमें प्रभाव, कथोपकथन एवं प्रस्तुति शैली के कारण उत्पन्न होता है। परंतु व्यंग्य प्रधान नाटकों के कथानक जटिल होते हैं। उनमें प्रत्यक्ष कथा की तह में परोक्ष कथा का प्रतिपादन होता है। प्रहसन, एकांकी एवं नाटिकाओं में भी प्रायः एक ही सरल तथ्य होता है।

समस्या प्रधान नाटकों में दोनों प्रकार के कथानक पाए जाते हैं। इनमें सरल कथानक घटना प्रधान होता है परंतु आम समस्या प्रधान नाटकों के कथानक जटिल होते हैं जिनका समाधान नाटक के अंत में लेखक द्वारा दिया जाता है अथवा इन समस्याओं का पड़ने वाला प्रभाव परिलक्षित किया जाता है। ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटक ऐसे ही नाटक हैं जिनमें इतिहास को पार्श्व में रखकर या समाज को केंद्र में रखकर समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक एवं राजनैतिक नाटकों का कथानक सबसे अधिक जटिल होता है। नाटक के तत्वों में विद्यमान एक तत्व 'उद्देश्य' भी कथानक में निहीत होता है तो नाटक के विकास क्रम के अंत में स्पष्ट होता है। सरल और जटिल दोनों ही धारणाओं के नाटकों के कथानक, लेखक अपनी इच्छा द्वारा सुखांत अथवा दुखांत बना सकता है। कथानक को अपनी मौलिक क्रियाशीलता द्वारा लेखक एक सफल नाटक में परिवर्तित कर सकता है।

कुछेक प्रसिद्ध नाटकों के कथानकों पर विचार करने से हमें उपरोक्त विचार अधिक स्पष्ट रूप में समझ आ सकते हैं। उदाहरणतः डॉ. सुरेश शुक्ल चन्द्र नाटक 'काला पत्थर',लेखक द्वारा परंपरागत ग्रामीण समस्याओं का एक सरल एंव सुखांत प्रस्तुतिकरण है। केवल एक गरीब किसान परिवार की समस्याओं द्वारा समूचे ग्रामीण समाज को सफलता से कथा में उभारा गया है। कथानक सरल परंतु सशक्त है।

इसी प्रकार भीष्म साहनी कृत 'मुआवजे' अति गंभीर एवं संवेदनशील कथ्य का सरल प्रतिपादन है। मुआवजे का धरातल धार्मिक दंगों जैसी अति संवेदनशील समस्या को लेकर बड़ी ही सावधानी से भारत के वर्तमान काल की परिस्थितियों को उजागर करता है। भीष्म साहनी ने स्वयं पंजाब विभाजन की त्रासदी को झेला और फिर उस पर कई साहित्यिक रचनाओं का सृजन किया जिसमें से उपन्यास 'तमस' विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिस पर बाद में फिल्म भी बनी। मुआवजे का कथानक विभाजन से भिन्न शांत वातावरण में समाज के अनेक स्वार्थी घटकों द्वारा स्वयंनिर्मित अपराध है जिसके पार्श्व में विभिन्न घटनाक्रमों की श्रृंखला है। राजनीतिक, पूँजीपति, दमित वर्ग एवं असामाजिक तत्व आदि सभी मिलकर दंगों को जन्म देते हैं और उससे लाभ उठाते हैं। आधुनिक नाटकों में इस प्रकार के कथानकों को उठाना बहुत ही प्रयोगवादी एवं धैर्यपूर्ण सिद्ध हुआ। इस प्रकार के कथानक हिंदी नाटकों में कम ही देखने को मिलते हैं।

कथानक के दृष्टिकोण से जटिल एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों को प्रस्तुत करता एक और सफल नाटक है 'खजुराहो का शिल्पी'! इस विषय पर नाट्य साहित्य में रचनाएं दुर्लभ हैं। खजुराहो के मंदिर की मूर्तियाँ शिल्पकला के दृष्टिकोण से कला का अनुपम उदाहरण है परंतु उनमें प्रस्तुत दृश्य सदा विवाद का कारण बने रहे हैं। यह एक वयस्क विषय है और धार्मिक क्षेत्र होने के कारण यह बहुत ही विवादास्पद रहा है। शंकर शेष ने कथानक को कला के निर्माण काल के धरातल पर इस मनोवैज्ञानिक रूप से उकेरा कि नाटक को अंत तक पढ़ने वाला न केवल सत्य से परिचित ही होता है वरन वह सत्य का प्रचारक भी बन जाता है। यह सशक्त कथानक का ही चमत्कार है।

इसी प्रकार धर्मवीर भारती का गीति नाट्य 'अंधा युग', युद्धों की असारता एवं विजय के पश्चात मोहभंग की स्थिति को प्रबलता एवं विलक्षणता से प्रस्तुत करता है। नाटक आठवाँ सर्ग में सुरेंद्र वर्मा ने बेधडक (bold) शैली में कालिदास काल में साहित्य एवं उस पर प्रशासनिक प्रतिबंध जैसे जटिल कथानक द्वारा समसामयिक समय में इस समस्या को बहुत ही प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है। नाट्य सम्राट जयशंकर प्रसाद के नाटकों के कथानक प्रायः ऐतिहसिक ही रहे परंतु इतिहास के धरातल पर उन्होंने समकालीन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया है जिसमें वे सफल भी रहे हैं। उनके नाटक 'अजातशत्रु', 'चंद्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'जनमेजय का नागयज्ञ' इसके उत्तम उदाहरण हैं।

अतः स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि कथानक किसी भी नाटक का पहला तत्व है **जिससे न केवल नाटक का जन्म होता है वरन यह नाटक की सफलता की कुंजी भी है।**

३.२.२ पात्र / चरित्र चित्रण (Character / Characterization):

पात्र वह प्रत्यक्ष माध्यम है जिसके द्वारा नाटक का कथानक पाठक/दर्शक के समक्ष आता है। कथानक नाटक की देह है और पात्र रीढ़ की हड्डी जिसपर देह खड़ी रहती है। नाटककार अपने कथानक के अनुरूप पात्रों का चयन अथवा सृजन करता है। पात्र ही वास्तव में नाटक की कथा के वाहक हैं।

लेखक अपनी कल्पना द्वारा जब कथानक निश्चित करता है तभी उसके मन मस्तिष्क में पात्रों के प्रति भी कोई विशेष संरचना विद्यमान होती है। अतः वह उन पात्रों का सृजन कथा के अनुरूप उनका निरूपण करता है। नाट्य साहित्य में पात्रों की संख्या को लेकर कोई विशेष सावधानी की आवश्यकता नही होती। परंतु मंचनीय नाटकों में संख्या अधिक महत्व रखती है। एक तो मंच पर उनकी व्यवस्था करना दूसरा पात्रों का प्रशिक्षण और यदि नाटक व्यवसायिक है तो पात्रों का वेतन भी ध्यान में रखना पड़ता है। बहुत ही कम संख्या के पात्र मंच पर एकरसता ले आते हैं वहीं अधिक संख्या में लिए गए पात्र मंच पर बोझिलता एवं अफरा-तफरी का माहौल खड़ा कर देते हैं। कथानक के अनुरूप सही संख्या में चुने गए पात्र नाटक की सफलता में सहायक होते हैं।

नाटक के पात्र भी दो प्रकार के होते हैं - वास्तविक एवं काल्पनिक। वास्तविक पात्र प्रायः ऐतिहसिक अथवा पौराणिक नाटकों में पाए जाते हैं जबकि काल्पनिक पात्र अन्य किसी भी नाटक में विषय जैसे सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, मनोरंजक इत्यादि। वास्तविक पात्र अपने आप को ही प्रस्तुत करते हैं। परंतु काल्पनिक पात्र अपने वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसाद के नाटक का पात्र 'चंद्रगुप्त' अपने ऐतिहसिक परिपेक्ष्य को प्रस्तुत करता है वहीं "काला पत्थर' की पुनिया कोई विशेष पात्र न होकर समूची स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व करती है जिन्होंने गलत वैवाहिक संबंध का सामना किया है।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यहाँ पर ध्यान देने योग्य है कि यह आवश्यक नहीं कि ऐतिहासिक पात्रों को लेखक उसी स्वरूप में प्रस्तुत करे जैसा कि उसका उल्लेख इतिहास में हुआ है। ऐतिहासिक एवं पौराणिकत पात्रों को अनेकों बार नाटककारों ने प्रतीक रूप परंतु नए प्रयोगवादी संदर्भ में प्रस्तुत किया है। उदाहरणत:'संशय की एक रात' के राम, 'खंड-खंड अग्नि' के राम से भिन्न है और यह दोनों ही राम वाल्मिकी रामायण के राम से भिन्न है। इसी प्रकार प्रसाद के नाटकों के पात्र एक नए कलेवर में पाठक/दर्शक के सामने आते हैं। इतिहास में स्कंदगुप्त का उल्लेख केवल एक-दो युद्ध के संदर्भ में आता है, किंतु प्रसाद के नाटक में स्कंदगुप्त एक त्यागी और साहसी नायक है। इतिहास में ध्रुवस्वामिनी का कहीं-कहीं उल्लेख मात्र मिलता है परंतु प्रसाद के नाटक की ध्रुवस्वामिनी नारी जाति के स्वाभिमान का निर्वाह करने वाली महानायिका है। प्रसाद ने न केवल इस नायिका को ऐतिहसिक पात्र के रूप में चुना वरन् उसका ऐसा चरित्र चित्रण किया कि आम पाठक भी उससे अवगत होते समय गर्व अनुभव करता है।

अंधायुग महाभारत की पौराणिक कथा का नए संदर्भ और नए परिपेक्ष्यमें प्रस्तुतिकरण है। परंतु अंधायुग के पात्र केवल पौराणिक न होकर समकालीन राजनैतिक वातावरण के सजीव पात्र बन जाते हैं। 'दो प्रहरी' आज की मोहभंग परिस्थिति में पड़े आम नागरिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। खजुराहो का शिल्पी नाटक के कुछ पात्र तो अवश्य ऐतिहसिक हैं परंतु

लेखक शंकर शेष ने अपनी कल्पना द्वारा अन्य अप्राप्तपात्रों का भी सृजन कर नाटक को पूर्णता दी है।

सामाजिक और अन्य नाटकों के पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह वो पात्र होते हैं जो किसी एक जीवन को नही वरन् आपने पूरे वर्ग को प्रस्तुत करते हैं। काला पत्थर की पुनिया, संतोषीकिसान, प्रभात, कल्लू सेठ, सरपंच, खोदवा चोर आदि ऐसे ही प्रतिनिधि पात्र हैं। हमें, समाज में ढूँढने पर ऐसा कोई एक पात्र तो नहीं मिलेगा परंतु अनेकों ऐसे लोग मिलेंगे जो उन जैसे ही होंगे।

नाटकों में प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त गौण एवं मूक पात्र भी होते हैं जो स्पष्ट रूप से तो नाटक की कथा आगे नहीं बढ़ाते परंतु उनके बिना नाटक को प्रदर्शित भी नहीं किया जा सकता। नाटककार अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण संवादों द्वारा करता है। अपने किस पात्र के किस चारित्रिक पक्ष को कैसे उजागर करना है और किन बातों को गुप्त रखना है यह लेखक पर निर्भर करता है। पात्र का सही चरित्र-चित्रण लेखक/नटककार अपनी रुचि एवं आवश्यकतानुसार कर सकता है।

नाटक के प्राचीन पात्रों में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है सूत्रधार की, कहीं-कहीं इन्हें 'नट' और 'नटी' भी कहा जाता है जैसे कि नौटंकी में। सूत्रधार का काम, नाटक में लेखक और अभिनेता के बीच की कड़ी को दर्शकों के समक्ष लाना होता है। सूत्रधार नाटक की गति और कथा का प्रमुख अंग है। अतः नाटक में पात्र विभाजन एवं निरुपण अति महत्वपूर्ण तत्व हैं।

३.२.३ संवाद / कथोपकथन (dialogue):

कथोपकथन एक संधियोग शब्द है। कथा+उपकथन अर्थात किसी एक के कथन या कहने पर फिर से कहना इसी को सरल हिंदी में संवाद कहते हैं। संवाद एक व्यक्ति (स्वगत संवाद-monologue), दो व्यक्तियों में और अनेक व्यक्तियों में भी हो सकता है। किसी भी कथा साहित्य और नाटक का सबसे मूल अंतर ही संवाद है। जहाँ अन्य कथा साहित्य में लेखक प्रत्यक्ष भी कथा का ताना बाना बुनता है और पात्रों के संवाद द्वारा भी कथा को आगे बढ़ाता है वही नाटक में सारी कथा, पात्रों का परिचय एवं उनका चरित्र-चित्रण संवादों के ही माध्यम से होता है। यदि कथानक नाटक की देह हैं, पात्र रीढ़ की हड्डी तो यह स्पष्ट है कि संवाद नाटक के प्राण हैं।

संवाद नियोजन एक कला है जिसे कुशल लेखक अपनी प्रतिभा द्वारा अपने पात्रों में निरूपित करता है जो नाटक में पात्र का चरित्र-चित्रण करते हुए उस पात्र की पहचान बन जाते हैं। हिंदी नाटकों में अनेकानेक ऐसे संवाद हैं जो आज साहित्य के इतिहास में अजेय अमर बन गए हैं। ऐसे संवाद आज उन नाटकों की पहचान बन गए हैं। फिल्मों को दादा साहेब फालके जी ने 'पर्दे पर नाटक' कहकर व्याख्यायित किया है। केवल तीन शब्दों का यह संवाद 'कितने आदमी थे' अपने पात्र ही नहीं अपनी फिल्म की भी पहचान बन गया है। सुनते ही एक बच्चा भी कह देगा की यह शोले में गब्बर सिंह का संवाद है।

संवाद नियोजन में लेखक को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि संवादअति दीर्घ न हो जिससे दर्शकों या पाठकों में एकरसता/नीरसता आ सकती है। कई नाटकों में स्वगत दीर्घ संवाद (prolonged monologue) पाए जाते हैं। रेकॉर्डिंग की सुविधा जब उपलब्ध नहीं थी

तब पात्र के सोचने अथवा विचारमंथन को स्वगत संवादों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, परंतु अब रेकॉर्डिंग की सुविधा दशकों से प्रयोग की जा रही है। इस स्थिति में वर्तमान नाटकों में यह स्वगत संवाद अटपटे लगते हैं। प्रसाद के नाटकों में तो इनका औचित्य समझ में आता है परंतु अत्याधुनिक नाटककारों को इससे परहेज़ करना चाहिए।

जहाँ लंबे संवाद नाटक को शिथिल बना देते हैं वहीं अति संक्षिप्त एवं अधूरे संवाद भी भ्रम एवं अस्पष्टता उत्पन्न करते हैं। संवादों के बीच में लंबा अंतराल (pause) भी नाटक की सहज गति में बाधा डालता है। स्पष्ट और उचित संवाद नाटक को लोकप्रिय बना देते हैं। हिंदी नाटकों में संवाद नियोजन बहुत ही उत्कृष्ठ श्रेणी का है। अपने सशक्त कथानकों एवं प्रभावी संवादों के कारण हिंदी के कई नाटक न केवल भारत में ही लोकप्रिय हैं वरन् वे वैश्विक साहित्य को बहुत कुछ सिखाते हैं।

संवादों की गति नाटक को भी गति देती है। संवाद प्रस्तुतिकरण में कालनियोजन (timing) भी बहुत आवश्यक है। संवाद द्वारा ही नाटक का कथानक और पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रकट होते हैं। संवाद ही अंत में नाटक के उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं। हिंदी नाटकों में मुख्य पात्रों के साथ-साथ सहायक पात्रों को महत्व देते हुए नाटककार उनके संवादों द्वारा जटिल समस्याओं को भी प्रकट करने में सफल हुए हैं। उदाहरणत: - काला पत्थर नाटक में दो ग्रामवासियोँ के बीच बातचीत-खोदवा चोरकि अब साधु बनकर, मंदिर का निर्माण कर लोगों को धर्म के नाम पर ठग रहा है, तब दूसरा ग्रामवासी पहले ग्रामवासी को समझाते हुए कहा है

"भारत में जनता को बेवकूफ बनाकर पैसा कमाना बहुत आसान है। बस थोड़ी सी बुद्धि और चालाकी चाहिए। भारत जैसा देश संसार में कहीं नहीं मिलेगा। सबसे ज्यादा निठल्ले भारत में ही पलते हैं।

(काला पत्थर - पृष्ठ क्रमांक -३५)

यह एक ही संवाद द्वारा भारत में कामचोरों की स्थिति को समझाने में सक्षम है। इसी प्रकार धार्मिक दंगों के धरातल पर लिखा नाटक 'मुआवजे', दंगों के पार्श्व में राजनीतिक गतिविधियों की सच्चाई को बहुत ही प्रभावी रूप से उजागर करता है। नाटक के आरंभिक दृश्य में ही जहाँ अभी दंगे हुए नहीं हैं, वहीं मिनिस्टर साहब तीन भाषण तैयार करवा रहे। एक दंगे से पहले, एक दंगे के समय और एक दंगों के बादस्पष्ट है दंगे होंगे नहीं करवाए जाएँगे।

संवाद इस प्रकार है:

मिनिस्टर : गुड गुड अब मेरी बात ध्यान से सुना। शहर में दंगे होने का डर है...... इस मौके पर तुम्हें तीन बयान तैयार करने होंगे।

सक्सेना : जी सर

मिनिस्टर : (धीरे-धीरे समझते हुए)तीन याना। पहला बयान इस समय तत्काल जारी करने लिए जब शहर की फिज़ा बिगड़ रही हैजब दंगे का खतरा है। इस बयान में मैं

लोगों से अपील करता हूँ कि वे शहर में अमन चैन बनाए रखें.., यह जज़्बाती तकरीर होगी जो सुननेवालों के दिल पर असर करे। करीब पाँच मिनट का बयान होगा। समझ लिया।

सक्सेना : जी, सर

मिनिस्टर : दूसरा बयान दंगा भड़क जाने पर दिया जाएगा, जब मार-काट शुरू हो गई होगी, जगह-जगह आग के शोले उठ रहे होंगे, जख्मियोँ को अस्पतालों में भिजवाया जा रहा होगा। यह दूसरा बयान होगा। यह भी पाँच मिनट का होना चाहिए।

सक्सेना : इस बयान में क्या लिखना होगा पर?

मिनिस्टर : इसमें मुआवजे का जिक्र खास तौर पर किया जाएगा। मारे जाने वाले हर व्यक्ति के पीछे दस हजार रुपए, हर जख्मी के पीछे तीन सौ रुपए।

सक्सेना : जी, सर

मिनिस्टर : इस बयान को पहले से तैयार कर लो। क्या मालूम दंगा हो जाने पर मुझे कहीं दौरे पर जाना पड़ जाए। तीनों बयान पहले से तैयार हो जाने चाहिए।

सक्सेना : जी, सर

मिनिस्टर : तीसरा बयान हमारे जनतंत्रात्मक मूल्यों, मान्यताओं के बारे में होगा। हमारे ऊँचे आदर्शों के बारे मे यह बयान दंगों के बाद दिया जाएगा।

सक्सेना : इसे लिखने की क्या जरूरत है? सर यह तो पहले से लिखा हुआ मौजूद है।

मिनिस्टर : होगा पर इसमें कुछ तथ्य, आँकड़े जोड़ने होंगे।

- मुआवजे दृश्य दो से पृ-१४-१५

दो लोगों के बीच हुए इस संवाद में लेखक अपने नाटक के पूरे उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है। मिनिस्टर और उनका सचिव ऐसे दो पात्र हैं जो दंगों जैसी संवेदनशील समस्याओं को भी बड़े ही व्यवसायिक ढंग से प्रयोग करते हैं। दोनों पात्र सजीव हैं और उपरोक्त संवाद बखूबी उनका चरित्र चित्रण करता है।

केवल एक उदाहरण और देकर इस प्रकरण को यहाँ समाप्त करते हैं। अंधा युग बहुत ही परिष्कृत कथानक पर लिखा गया गीति नाट्य है जिसका अनेकों बार सफलता से मंचन भी हुआ है। यह नाटक युद्ध (संघर्ष) के मोहभंग एवं किसी महानायक के विलक्षण नेतृत्व को परिलक्षित करता है। वृद्ध याचक का यह संवाद कितना सारगर्भित है।

“जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है
नियति नही है पूर्व निर्धारित

उसके हर क्षण मानव निर्णय बनाता-मिटाता है"

- अंधा युग -पृ-१६-१७

उपरोक्त विवेचन एवं उदाहरण नाटक में संवाद की सबसे प्रमुख भूमिका को सिद्ध करते हैं।

३.२.४ भाषा शैली:

अन्य विधाओं की भांति ही नाटक में भी भाषा एक प्रमुख तत्व है। नाटक में भाषा सशक्त और उपयुक्त होना अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि भाषा सही नही हुई तो संवाद भी सही नही होंगे। ऐसी स्थिति में नाटक द्वारा लेखक अपने मनोगत का संप्रेषण नहीं कर सकेगा। भाषा का, कथानक एवं संवाद के अनुरूप होना अतिआवश्यक है। उपयुक्त भाषा नाटक के संवादों को प्रभावशाली बना देती है परंतु यदि भाषा सही नही हुई तो संवाद अपने प्रतिपाद्य से भटक जायेंगे। ऐसी स्थिति में नाटक की उदद्शेयपूर्ती संभव नही हो सकती।

नाटक, साहित्य के इतिहास में प्राचीन काल से लिखे जाते रहे हैं। भारत में भी नाट्य साहित्य परंपरा अति प्राचीन है। यद्यपि स्वरूप में अंतर आता रहा है। प्राचीन भारतीय नाटकों में विषयानुसार संस्कृत का भी प्रयोग हुआ है। कालांतर में आते-आते परिष्कृत संस्कृत के स्थान पर लौकिक संस्कृत और प्राकृत का भी प्रयोग हुआ। कालिदास के नाटकों में यह भाषा शैली सहज ही प्राप्त हो जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास में आरंभिक काल में नाटकों की रचना कम ही हुई है। आदिकाल और मध्यकाल में महाकाव्यों और मुक्तक पदों की रचना में कभी नाटक की कमी अनुभव नही हुई। अतः हम हिंदी नाटकों की भाषा को भारतेंदु काल से ही समझना आरंभ करेंगे।

भारतेंदु कालीन नाटकों में खड़ी बोली हिंदी का पूर्व स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है। यह समकालीन जन भाषा थी। आम भारतीयों को समकालीन परिस्थिति से अवगत कराने हेतु इस काल में नाटककी विधा का प्रयोग कर समकालीन हिंदी को माध्यम बनाया गया। इस काल में नाटकों का मंचन तो बहुत नही हुआ परंतु नाट्य साहित्य को बहुत ख्याति मिली। जनभाषा ने जनता को आकर्षित किया और खड़ी भाषा ही संप्रेषण का मुख्य साधन बनी।

हिंदी का विकास और परिवर्तन दोनों ही इस काल के नाटकों में दिखाई देते हैं। प्रसाद काल तक आते-आते नाटकों में संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रचलन अपने शिखर तक पहुँच गया। प्रसाद के नाटकों में विषयवस्तु एंव ऐतिहसिक पात्रों के लिए यह भाषा बहुत सटीक थी परंतु उस काल के बाद अन्य कई नाटकों में भी इस भाषा का प्रयोग कहीं-कहीं खटकने लगा। उदाहरणतः प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'अजातशत्रु' का एक संवाद जो स्वयं अजातशत्रु कहता है --"क्यों रे लुब्धक तू आज मृगशावक नही लाया, अब मेरा चित्रक किससे खेलेगा"

आज लुब्धक, चित्रक जैसे शब्द तो आम संस्कृत को जानने वाले के अतिरिक्त किसी की समझ में नहीं आते। प्रसाद के नाटकों मेंजिस भद्र भाषा का प्रयोग हुआ है उससे संस्कृत के अभिजात्य काल को पुनर्जीवित कर दिया। प्रसाद के नाटकों में तो गालियाँ/अपशब्द भी इतनी परिनिष्ठ भाषा में दी गई हैं कि साधारण भाषा जानने वाला इन्हें गालियाँ न समझ कर स्वयं को प्रभावित अनुभव करता है। जैसे -------- अनार्य, निर्ववीर्य, अपदार्थ आदि

इस प्रकार की भाषा अन्य कई नाटकों में भी पाई जाती है। सुरेश वर्मा का नाटक 'आठवाँ सर्ग', 'खजुराहो का शिल्पी', 'कोणार्क' आदि परिष्कृत संस्कृत का प्रयोग सफलता से करते है। परंतु इससे पृथक कई नाटककारों ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग तो किया परंतु हिंदी को आधार बनाया। 'अंधा युग' दशकों पहले की रचना है। इस भाषा शैली का यह गीति-नाट्य उत्तम उदाहरण है। नाटक में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग तो है परंतु बहुलता नही, वरन हिंदी अपने स्वरूप में दिखाई देती है। 'आषाढ़ का एक दिन', 'खंड-खंड अग्नि' आदि ऐसी ही भाषा शैली के नाटक हैं।

आधुनिक काल में नाटकों की भाषा को लेकर बहुत प्रयोग हुए हैं। जनसाधारण भाषा सभी की प्रिय भाषा रही है। सामाजिक एवं समस्या प्रधान नाटकों में चलंत भाषा का जमकर प्रयोग हुआ। ऐसे नाटकों में मनोरंजक नाटक भी आ जाते हैं। इन नाटकों की भाषा प्रायोगिक एवं कहीं-कहीं प्रादेशिक और आँचलिक शैली की भी हो जाती है। नाटक 'बकरी', 'काला पत्थर', 'मुआवजे' आदि अपने कथानक के अनुरूप जनभाषा, प्रादेशिक एवं आँचलिक भाषा के शब्दों का बहुत सफल प्रयोग हुआ है। नुक्कड़ नाटक, पथ-नाटक आदि भी परिष्कृत के स्थान पर साधारण और जनसामान्य की भाषा शैली को अपनाते हुए ही इतने सफल हुए हैं। हिंदी के आधुनिक नाटकों में अन्य भाषा के शब्दों का भी प्रयोग बहुतायात में होता है। विशेषतः अंग्रेजी भाषा के शब्द आज हमारी भाषा का एक हिस्सा बन गए हैं अतः नाटककारों में अब इनके प्रयोग को लेकर रूचि बढ़ती जा रही है। व्यवसायिक नाटकों में आजकल द्विअर्थीय संवाद, निम्नस्तरीय भाषा एवं गाली-गलौज वाली भाषा शैली का भी प्रयोग होने लगा है। केवल कुछेक कथानकों की आवश्यकता को छोड़कर अन्यत्र प्रयोग अनुचित है जिससे साहित्य का स्तर-हनन होता है। इस प्रवृत्ति को रोकना आज बहुत ही आवश्यक है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भाषा संवाद संप्रेषण का एक मात्र साधन है। किसी भी नाटककार को अपने नाटक के कथानक एवं पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

३.२.५ देश काल और वातावरण:

नाटक कथा साहित्य के धरातल पर ही लिखा जाता है। जब कथा है तो वह कहीं न कहीं, कभी न कभी और किसी न किसी परिवेश में अवश्य घटी होगी। किसी भी कथा से संबंधित कहाँ, कब और कैसे ही देशकाल और वातावरण है।

किसी लेखक के लिए अपने नाटक के कथानक काल, पात्रों के संदर्भ में यदि देशकाल और वातावरण उससे मेल नही खाएगा तो वो नाटक दर्शकों के लिए असहज हो जाएगा। काल, स्थान और परिवेष का एक दूसरे से साथ भी तालमेल (sync) होना आवश्यक है। विशेष रूप में ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में, यदि स्थान और काल का उल्लेख सही नही होगा तो वह उद्देश्य की पूर्ती में असफल रहेगा। स्थान और काल का अर्थ केवल देश-प्रदेश, प्रांत, नगर या गाँव का नाम ही केवल नहीं है वहाँ काल का अर्थ भी केवल सन और दिनांक बता देना मात्र नही है।

इसे थोड़ा सरल शब्दों में समझने का प्रयास करते हैं। देशकाल और वातावरण में कथानक की समकालीनt प्रथाएँ, वेशभूषा, खान-पान, यातायात के साधन, आमोद प्रमोद के साधन एवं पद्धतियां, परंपराएँ, पर्व और धार्मिक क्रियाएँ आदि सभी आ जाते हैं। उदाहरण:- यदि कोई लेखक झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई पर नाटक लिख रहा है। यदि पहले दृश्य में लक्ष्मी बाई के संवाद के पूर्व लेखक कोष्ठक में निर्देश देता है।

(१८५४ में महारानी लक्ष्मीबाई मुंबई से ठाणे जाने वाली रेल गाड़ी में बैठकर हिंदी का समाचार पत्र पढ़ रही है)

इस निर्देश को एक सामान्य पाठक भी मानसिक रूप से स्वीकार नही करेगा, विद्वानों का तो क्या कहना। ऐसे नाटक का मंचन भी करने का साहस कोई नही करेगा। ध्यान से देखा जाए तो यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि भारत में हिंदी का पहला समाचार पत्र उदंत मार्तण्ड १८२६ में प्रकाशित हुआ था। जिसके पश्चात किसी न किसी रूप में समाचार पत्र छप रहे थे। वहीं भारत में पहली रेलगाड़ी १८५३ में बोरीबंदर से ठाणे तक चली थी और इसके बाद चलती ही रही थी। महारानी लक्ष्मी बाई का देहांत १८५७ में अंग्रेजों से युद्ध करते हुए बहुत घायल हो जाने पर हुआ।

अतः यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन काल में समाचार पत्र भी छप रहे थे रेलगाड़ियाँ भी चल रही थीं। केवल ऐतिहासिक आँकड़ों के आधार पर प्रमाणित की गई यह सच्चाई वास्तविक सच्चाई नही होगी। वास्तविकता यह है कि यह सब कुछ एक ही समय पर एक ही देश में होते हुए भी एक साथ नही थे। महारानी लक्ष्मीबाई ने कभी समाचार पत्र, रेलगाड़ी में बैठकर नही पढ़ा था। अतः लेखक को अपने कथानक में छोटी से छोटी बात में भी काल, स्थान और उनसे जुड़ी सभी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

नाट्य साहित्य में ऐसी त्रुटियाँ कम मिलती हैं परंतु नाटक के मंचन के समय निर्देशक द्वारा अनेकों बार समकालीन परिधान, व्यवसाय (फैशन) अथवा मंच सज्जा आदि का प्रयोग किया जाता है जो नाटक में पात्रों पर अटपटा लगता है। यदि ध्रुवस्वामिनी को गुप्त काल का पात्र होने पर भी मंचन के समय आधुनिक वेशभूषा (समकालीन साड़ी या make-up, hair straightening, eyebrows) इत्यादि दे दिया जाए तो यह निश्चय ही देशकाल और वातावरण में खटकेगा। परंतु ऐसा बहुत से नाटकों के मंचन में देखा गया है। मराठी से हिंदी में अनुदित श्री विजय तेंडुलकर के अति प्रसिद्ध नाटक, 'घासीराम कोतवाल' के कई प्रस्तुतिकरण हो चुके हैं। इनमें से उत्तर भारत में किए गए मंचनों में परिधान मराठी तो हैं परंतु वे पेशवा काल और पुणे नगरी के न लगकर फिल्मी परिधानों से प्रेरित हैं।

ऐसी स्थिति में निर्देशक को नाटक के रचयिता द्वारा दिए गए स्थान और काल संबंधी दिशा निर्देशों को गंभीरता से पालन करते हुए प्रस्तुत करना चाहिए। प्रायः सभी नाटककार अपने नाट्य साहित्य में संक्षेप में ऐसे निर्देश देते हैं। जयशंकर प्रसाद तो अपने नाटकों की पूर्वपीठिका के रूप, उनके द्वारा किए गए शोध को बड़े विस्तार से लिखते हैं इसके उपरांत भी नाटक के विभिन्न दृश्यों के आरंभ में ही स्थान स्पष्ट कर देते हैं। अन्य लेखकों ने भी प्रायः बहुत स्पष्ट निर्देश दिए हैं। जैसे

१) चंद्रगुप्त - प्रसाद प्रथम अंक,१ दृश्य (स्थान -तक्षशिला के गुरुकुल का मठ)

दृश्य ५ (मगध में नंद की राजसभा)

(सभी दृश्यों के पूर्व स्थान दिया गया है और काल है मौर्यकाल)

२) स्कंदगुप्त - प्रसाद

प्रथम अंक- (उज्जयिनी में गुप्त साम्राज्य का स्कंधावर)

द्वितीय अंक- (मालव में शिप्रा तट कुंज)

तृतीय अंक- (शिप्रा तट) आदि

३) अंधा युग - धर्मवीर भारती - पात्र एवं घटना काल के पूर्व ही लेखक ने 'निर्देश' नामक लेख लिखकर बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। पात्र परिचय के पश्चात नाटक का प्रथम अंक आरंभ होने से पूर्व लिखा है

घटना - काल

महाभारत के अठारवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक

४) कोणार्क - जगदीशचंद्र माथुर

काल - ईसवी सन १२६० के लगभग

द्वितीय अंक - वही

तृतीय अंक - मंदिर के गर्भ गृह से सटा अंतराल

५) खजुराहो का शिल्पी - शंकर शेष स्थान - खजुराहो

काल - ईसा की दसवीं - ग्यारहवीं शती

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि नाटक के तत्वों में देशकाल और वातावरण ऐसा प्रमुख तत्व है जिसका सटीक होना अति आवश्यक है। हिंदी के नाटककारों ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है और मंचन के समय भी यदि इन तत्वों को उचित स्वरूप में प्रस्तुत किया जाए तो नाटक अवश्य ही सफल होगा।

३.२.६ उद्देश्य:

उद्देश्य का अर्थ है वह लक्ष्य/ध्येय या प्रयोजन जिस हेतु नाटक की रचना की गई है। प्रत्येक रचनाकार अपने मन मस्तिष्क में किसी कारण से ही किसी साहित्यिक रचना का सृजन करता है। यदि रचनाकार अपने कथा साहित्य के लिए नाटक की विधा को चुनता है तो अवश्य ही वह न केवल अपनी कथा को ही पाठक तक पहुँचाना चाहता है वरन् उस कथा के साथ कथा के चित्रण (परिकल्पना) को भी दर्शकों के समक्ष रखना चाहता है।

कोई भी रचना बीना किसी उद्देश्य के की ही नही जा सकती। जहाँ अन्य विधाओं में लेखक का उद्देश्य लिखे हुए माध्यम से पाठक के समक्ष आता है वहीँ नाटक में यह लिखने के साथ-साथ दिखने और सुनने (दृश्य - श्रव्य) माध्यम से भी दर्शकों के सामने आता है। नाटक के सारे अन्य तत्व मिलकर एक उद्देश्य की ही प्राप्ति करते हैं।

प्रायः साहित्यिक नाटक किसी गंभीर अथवा व्याप्त समस्या को लेकर लिखे जाते हैं जहाँ लेखक कुछ पात्रों के माध्यम से समुचे वर्ग विशेष की बात कहने का प्रयत्न करते हैं। हिंदी नाटकों में ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की एक लंबी परंपरा रही है। इसके पीछे कुछ आम पाठक यह सोच लेते हैं कि लेखक को इन कथाओं में रूचि है और वे नाटक के माध्यम से इतिहास को पुनर्जीवित कर रहे हैं। यह केवल उद्देश्य है, परंतु यदि उन लेखकों के दृष्टिकोण को देखा जाए तो उनका उद्देश्य हमारी सोच से कहीं ऊँचा और महान होता है। ऐतिहसिक और पौराणिक कथानक एवं पात्रों द्वारा सर्व प्रथम लेखक अपने अतीत की महान धरोहर को वर्तमान में लाने का प्रयास करता है। दूसरा उनका उद्देश्य केवल प्राचीन कथाओं को दोबारा कहना मात्र नहीं है। सभी ने उन कथानकों और पात्रों को अपने समकालीन संदर्भ में प्रस्तुत किया है। यह अतीत से वर्तमान पर लाने वाली राह पर चलते हुए भविष्य के लिए एक सुगम, सफल और सुसंस्कृत पथ खोजना है।

वर्तमान सदी इतिहास से उद्बोधन लेकर सनातन प्रश्नों के उत्तर नए संदर्भ में खोजती है। यही कार्य ऐतिहसिक और पौराणिक नाटकों के लेखकों ने किया है। प्रसाद जी का नाटक 'चंद्रगुप्त' इसका अति उत्तम उदाहरण है। 20 वीं शताब्दी तक भारतीय जगत चाणक्य के अर्थ शास्त्र के अतिरिक्त मौर्य काल के विषय में अधिक नही जानता था। प्रसाद जी ने अथक परिश्रम और शोध के पश्चात, पहले चंद्रगुप्त मौर्य पर अपना एक शोध आलेख प्रकाशित करवाया। तत्पश्चात अपने शोध की पूर्ण परिपक्वता से नाटक चंद्रगुप्त के रूप में सृजित किया। यहाँ उनका उद्देश्य केवल इतिहास से अवगत कराने मात्र नही था। एक ओर उन्होंने इतिहास को पुनर्जीवित किया, दूसरी ओर चंद्रगुप्त के महानायकत्व को प्रतीक बना पाठक में hero-worship नायक जयगान की परंपरा डाली। तीसरी ओर समकालीन अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध राष्ट्रभक्ति की ज्वाला को प्रज्ज्वलित किया, तो चौथी ओर सहनायक के रूप में चाणक्य जैसे कुशल अर्थशास्त्रीएवं प्रशासक की आवश्यकता को आधुनिक काल में आवश्यक बताया। चंद्रगुप्त नाटक अपने उदात्त उद्देश्य के कारण ही नाट्य साहित्य की एक कालजयी रचना बन सका।

इसी प्रकार स्कंदगुप्त के माध्यम से त्याग, बलिदान और राष्ट्र प्रेम के उद्देश्य की पूर्ती होती है। प्रसाद का नाटक ध्रुवस्वामिनी समकालीन नाटकों की श्रेणी में अपवाद (cult) नाटक है। इतिहास केवल ध्रुवस्वामिनी का नाम मात्र ही जानता था परंतु जयशंकर प्रसाद ने इस उपेक्षित महान पात्र को न्याय देते हुए ध्रुवस्वामिनी को महानायिका बना दिया। एक उद्देश्य की पूर्ती तो इसी से हो गई परंतु वास्तव में उद्देश्य तो और भी महान है।नाटक में शकराज की अनैतिक माँग पर ध्रुवस्वामिनी के पति रामगुप्त द्वारा अपनी पत्नी को एक रात के लिए शकराज के पास भेजने के लिए मान जाना एक लांछनस्पद निर्णय था। नाटक में चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी के स्थान पर डोली में जाता है और शकराज का वध कर उसे इस अपराध का दंड देता है। तत्पश्चात ध्रुवस्वामिनी राज पुरोहितों और सम्राट के समक्ष अपने पति से विवाह-

विच्छेद (तलाक, divorce) की माँग करते हुए तर्क देती है कि जो पति, पत्नी की मान-मर्यादा की रक्षा न कर सके उसे पति होने का कोई अधिकार नहीं है।

यह एक सनातन प्रश्न है जो अनगिनत प्रताड़ित स्त्रियों समेत स्वयं द्रौपदी ने पूछा था परंतु अनादि काल से इसका उत्तर नहीं दिया जा सका। द्यूत क्रीडा में द्रौपदी को स्वयं युधिष्ठिर ने दाँव पर लगाया था जिसे वह हार जाता है। एफ द्वारपाल द्रौपदी को बुलाने के लिए आता है तो द्रौपदी उसे एक प्रश्न देकर युधिष्ठिर से उत्तर लाने के लिए कहती है।

वह प्रश्न था "महाराज पहले स्वयं को द्यूत में हारे या मुझे? "इस प्रश्न का उत्तर समुचे इतिहास को बदलने वाला था क्योंकि

१) **पहली अवस्था -** जहाँ युधिष्ठिर द्रौपदी को पहले दाँव पर लगाता है और हार जाता है तो क्या युधिष्ठिर के लिए पत्नी केवल वस्तु भर है जीवित व्यक्ति नहीं? और यदि जीवित व्यक्ति है तो एक पति अपनी इज्जत बचा लेता है और अपनी पत्नी की इज्जत दाँव पर लगा देता है तब ऐसे स्वार्थी और कायर को पति बनने का क्या अधिकार?

२) **दूसरी अवस्था -** यदि युधिष्ठिर पहले अपने आप को दाँव पर लगाते हैं और हार जाते हैं तो वे दुर्योधन के दास बन जाते हैं और द्रौपदी अभी भी महारानी है। क्या किसी दास को राज्य की महारानी को दाँव पर लगाने का अधिकार है?

दोनों ही परिस्थितियों में द्रौपदी को दाँव पर लगाना अनुचित था परंतु महाभारत ने इस घोर अपराध के बाद भी युधिष्ठिर को धर्मराज का पद दे दिया। द्रौपदी के शास्वत प्रश्न का किसी भी काल में सही उत्तर प्राप्त ही नही हुआ। प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से इस अति जटिल प्रश्न को न केवल दोबारा पूछा वरन् इसका स्पष्ट हल देते हुए समूची नारी जाति को न्याय दिया। नाटक में न केवल ध्रुवस्वामिनी के विवाह विच्छेद को ही स्वीकृत किया जाता है वरन् उसे अपने देवर और मर्यादा रक्षक चंद्रगुप्त के साथ विवाह की अनुमति भी दे दी जाती है। अपने महान उद्देश्य पूर्ती के कारण ही नाटक ध्रुवस्वामिनी नाट्य साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है।

शंकर शेष का नाटक खजुराहो का शिल्पी अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल है जहाँ नाटक द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि काम-वासना बहिर्जगत में व्याप्त है, आत्मा सदा परमात्मा का अंश होने के कारण निष्कलंक है। मंदिर के बाहरी परिकोट में उकेरी गई कामुक प्रतिमाएँ जहाँ विवाद का कारण रही है वहीँ मंदिर का भीतरी भाग आत्मा की भांति सरल एंव निष्पाप है। नाटक का उद्देश्य पात्रों और संवादों से स्पष्ट हो जाता है।

मुआवजे नाटक में भीष्म साहनी का उद्देश्य दंगों के पार्श्व में सत्ता, असामाजिक तत्व, धर्मांध, पथभ्रष्ट ठेकेदार और पूँजीपतियों के स्वार्थी गँठजोड़ को उजागर करना ह जो स्पष्ट रूप से नाटक द्वारा उभर कर सामने भी आता है। अंधायुग संघर्ष के पश्चात मोहभंग की अवस्था को महाभारत में पौराणिक धरातल द्वारा उभारने में सफल हुआ है। वहीं काला पत्थर जैसे नाटक अति आधुनिक कालीन होते हुए भी बड़ी सरलता से अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हुआ। लेखक का उद्देश्य ही था ग्रामीण जीवन में महाजनी व्यवस्था, बेमेल विवाह और गरीबों की परिस्थिति को पाठक तक पहुँचाना जो नाटक द्वारा पूर्णतः स्पष्ट रूप से सामने आता है।

केवल साहित्य साधन एवं समस्या निरूपण ही नाटक का उद्देश्य नहीं हो सकता। व्यवसायिक नाटकों का उद्देश्य धन अर्जन एवं यश प्राप्ति भी होता है। ऐसी स्थिति में नाटक के लेखक और प्रस्तुतकर्ता दोनों को ही दर्शकों को पसंद और समझ को ध्यान में रखना चाहिए। यदि नाटक प्रभावी न हुआ तो दर्शक उसे देखने के लिए पैसे खर्च नहीं करेगें और न ही नाटक को प्रशंसा मिलेगी।

मनोरंजक नाटक इसी प्रकार के व्यवसायिक नाटक हैं। नाटक के पार्श्व में लेखक का उद्देश्य बेशक किसी न किसी गंभीर विषय को उभारना हो सकता है। परंतु प्रस्तुतिकरण में मनोरंजन का तत्व आवश्यक है जिसमें दर्शक नाटक को आत्मसात कर सके। अतः नाटक की रचना में धन अर्जन एवं यशप्राप्ति भी एक उद्देश्य हो सकता है।

उद्देश्य नाटक का बीज है जिससे पूरे नाटक का वृक्ष प्रफुल्लित होता है। अतः नाटक के तत्वों में उद्देश्य एक अति महत्वपूर्ण अंग है।

३.२.७ संकलनत्र / रंगमंचियता / प्रस्तुतीकरण:

नाटक को अन्य किसी भी कथा साहित्य से पृथक करने वाला सबसे प्रमुख तत्व है नाटक का रंगमंच प्रस्तुति के लिए उपयुक्त होना। नाट्य साहित्य केवल लिखित रूप में होता है परंतु नाटक तो प्रत्यक्ष दर्शकों के सामने खेला जाता है। रंगमंच से संबंधित सारे तत्व पूर्व अध्याय में दिए जा चुके हैं। अतः यहाँ केवल नाटक के तत्व के रूप में नाट्य साहित्य में निहित मंचन के गुणों पर ही चर्चा करेंगे।

नाट्य साहित्य लिखने की एक विशेष पद्धति है। लेखक अपनी बात को स्वयं नही कहता वरन् पात्रों के सहारे संवादों द्वारा प्रस्तुत करता है। जैसे एक कहानी में लेखक यदि दो मित्रों पर शिक्षा जगत से जुड़ी कहानी लिख रहा है तो प्रायः ऐसे ही लिखेगा

"एक महानगर में गाँधी कॉलेज में पढ़ने वाले छात्रों में मोहन और रवि में घनिष्ठ मित्रता है। एक दिन मोहन ने रवि से कहा, "यार हमारी डिग्री काम तो आएगी ना? " रवि ने अनमने उत्तर दिया, "पता नही"

यही तथ्य नाटककार नाट्य लेखन की शैली में ऐसे लिखेगा:-

काल - वर्तमान, समय

स्थान - किसी महानगर में गाँधी कॉलेज का प्रांगण

मोहन - (उदासीन चेहरे के साथ) यार हमारी डिग्री काम तो आएगी ना?

रवि - (अनमने अन्यत्र देखते हुए) पता नही

अतः नाटक लिखते समय कोष्ठक में दिए गए दिशा निर्देश मंचन एवं अभिनय की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक हिंदी नाटकों में उन्हें रंगमंच के अनुकूल बनाने के लिए प्रायः सभी लेखकों ने कोष्ठक में निर्देशों का प्रयोग किया है। नाटक लेखन का यह एक प्रमुख तत्व है। नाटक के निर्देशन के समय कोष्ठक के यह निर्देश नाटक के मंचन और लेखक के दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में सहायक होते हैं।

सबसे पहले तो नाटक में सभी तत्वों का संकलन सही अनुपात में होना आवश्यक है। किसी एक तत्व को अन्य की तुलना में अधिक महत्व देने से नाटक का संतुलन बिगड़ जाता है। जैसे यदि कथानक प्रभावी हो और पात्रों का चरित्र-चित्रण उसके अनुरूप न हो तो नाटक सफल नही होगा। पात्र उपयुक्त पर संवाद प्रभावशाली न हो तब भी यही समस्या है। पहले तीन तत्व ठीक परंतु देश-काल और वातावरण मेल न खाएँ तब भी नाटक सफल नही होगा। परवर्ती तत्व सही परंतु कथानक में दम न हो तब भी यही हाल है और सबसे महत्वपूर्ण बात यदि नाटक में उद्देश्य ही न हो तब भी नाटक सफल नही हो सकता। अतः मंचन के पूर्व किसी भी नाटक में संकलनत्रय का परीक्षण भी मंचन के लिए आवश्यक है।

दिशा निर्देशों के अतिरिक्त नाटक के मंचन में मंच सज्जा (stage decoration) भी आवश्यक है। इस तथ्य को लेखक ने अपने नाटकों के अंकों एवं दृश्यों के विभाजन करते समय ही नियोजित कर लेना चाहिए। सामग्री का मंच पर सुसज्जित होना नाटक को प्रभावी बनाता है परंतु सामग्री को शीघ्रता से लाना ले जाना और बदलना सभी समय माँगते हैं। अतः लेखक को जितनी सामग्री की आवश्यकता हो उतनी ही उल्लेखित करनी चाहिए सामग्री (properties) की भरमार या कमी दोनों ही नाटक की त्रुटी साबित होंगी।

मंचन की दृष्टि से नाटक के पार्श्व में पर्दे का भी उतना ही महत्व है। पार्श्व के दृश्य (Background scenes) को पर्दे के माध्यम से सफलता से प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे अंधा युग में महाभारत की रणभूमि का दृश्य। चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के महल और राजदरबार के दृश्य। आठवाँ सर्ग में कालिदास का कमरा और अंत में चंद्रगुप्त के राजमंडप का दृश्य। खजुराहो का शिल्पी में खजुराहो की वास्तविक प्रतिमाओं की छवि। मुआवजे में चौपाल दृश्य दिखाने के लिए पीछे पर्दे पर पीपल का पेड़ और चबूतरा या पुलिस दफ्तर दिखाने के लिए कक्ष की छवि। काला पत्थर में तो लेखक ने विंग्स को ही मंच पर साज सज्जा का भाग बनाकर एक ओर के विंग को संतोषी किसान की झोंपड़ी का द्वार बनाया है तो दूसरे विंग को कल्लू सेठ के मकान के पीछे पार्श्व में पहले दृश्य में गाँव का दृश्य है तो अंतिम दृश्य में गाँव की पंचायत का। पर्दे पर अंकित छवियाँ नाटक के प्रस्तुतिकरण को मंच पर बहुत ही प्रभावी बना देती है। आज के अति आधुनिक दौर में हाथ से चित्रित (hand-painted) पर्दों के स्थान पर कम्प्यूटर चालित एवं प्रोजेक्टेड और अब तो डिजिटल पर्दों का भी प्रयोग होता है।

मंचन की दृष्टि से नृत्य और संगीत का भी नाटक में ध्यान रखना योग्य है। कभी-कभी लिखित नाटकों में नृत्य अथवा गीत नहीं होते किंतु निर्देशक उन्हें अपनी ओर से मंचन के समय जोड़ देता हैं और कभी उन्हें निकाल भी देता है। जैसा कि प्रसाद के नाटकों में गीतों की संख्या बहुत अधिक होती है। जिन्हें मंच पर प्रस्तुत करते समय नाटक के अधिक लंबा होने का भय उत्पन्न हो जाता है अतः समय नियोजन हेतु इन्हें हटा दिया जाता है।

पार्श्व संगीत नाटक के प्रस्तुतिकरण का महत्वपूर्ण अंग है। नाट्य साहित्य में पार्श्वसंगीत हेतु कदाचित ही कोई निर्देश दिए जाते हैं। यहाँ नाट्य साहित्य को मंच पर नाटक के रूप में प्रस्तुत करते समय इसकी विशेष व्यवस्था और योजना करनी पड़ती है। प्रत्येक भाव घटना संवाद के अनुरूप पार्श्वसंगीत नाटक को समझने में सहायक होता है। प्राचीन समय में इसके

लिए वाद्य वृंद नेपथ्य में बैठाया जाता था पर आज के आधुनिक समय में रेकॉर्डिंग ने इसकी समस्या को हल कर दिया है।

नाटक के मंचन में प्रकाश की व्यवस्था भी महत्वपूर्ण है। यत्र-तत्र किन्हीं नाटकों में प्रकाश संबंधी निर्देश होते हैं अतः नाटक के निर्देशक को ही इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। जन नाटक, पथ-नाट्य, नौटंकी आदि में प्राकृतिक प्रकाश अथवा एक ही स्थान पर व्याप्त प्रकाश से काम चल जाता है परंतु, शास्त्रीय श्रेणी एवं उच्च कोटि के नाटकों में प्रकाश बहुआयामी पद्धति से प्रयोग किया जाता है जिसका उल्लेख इसके पूर्व वाली इकाई में विस्तृत रूप से किया गया है ।

अतः यह स्पष्ट है कि किसी भी नाट्य साहित्य में प्रथम छः तत्वों का होना आवश्यक है और यदि नाटक को मंच पर प्रस्तुत किया जाना है तो सभी सात तत्वों का होना अनिवार्य है। इनमें से किसी भी एक का अभाव, किसी भी एक का अधिक या कम होना अथवा किसी भी तत्व का संतुलन में न होने से नाटक सफल नहीं हो सकेगा। सोदाहरण उपरोक्त विवेचन पाठकों को नाटक के तत्व समझने में सहायक होगा।

३.३ नाटक की विशेषताएं

विश्व में प्रत्येक वस्तु अथवा तत्व की कोई न कोई विशेषता अवश्य होती है। साहित्य तो विशेषताओं का महासंगम है। साहित्य की प्रत्येक विधा में अपनी ही विशेषताएँ हैं। इसी प्रकार कथा साहित्य होते हुए भी नाटक की अपनी विशेषता है। नाटक की विशेषताओं के लिए अनेक विद्वानों ने विभिन्न मत प्रतिपादित किए हैं। किसी ने नाटक के तत्वों को ही नाटक की विशेषता माना है। कइयों ने तो नाटक के प्रकारों को भी विशेषताओं में सम्मिलित कर लिया। कहीं कहीं विद्वानों ने केवल रंगमंच के महत्व को ही नाटक की विशेषता माना। अतः हम यहाँ किसी विवाद में अथवा विचार में न पड़कर छात्रों के दृष्टिकोण से सरल एंव सुग्राह्य विवेचन ही प्रस्तुत कर रहे हैं।

नाटक और कथा साहित्य में बहुत से तत्व समान हैं। नाटक को अन्य विधाओं से पृथक करने वाली सबसे विलक्षण विशेषता है कि नाटक 'दृश्य-श्रव्य' माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ भी कई विद्वान कहेंगे कि रंगमंच नाटक की विशेषता है। परंतु वृहद दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट दिखाई देता है कि

नाट्य साहित्य + रंगमंचीयता = नाटक

अतः नाटक की विशेषता इसके तीन अंगों का समन्वय है

लिखित + दृश्य + श्रव्य = नाटक

नाटक सबसे पहले जन्म लेता है नाट्य साहित्य से। अनेकों बार कहानियों और उपन्यासों को भी नाटक में रुपांतरित किया गया है जैसे कि महाभोज, भोलाराम का जीव, वसीयत आदि। परंतु इनमें भी पहले कहानी को लिखित नाटक (पटकथा) में परिवर्तित करना आवश्यक है अतः नाटक में सर्व प्रथम लेखन कार्य, प्रस्तुतिकरण के दृष्टिकोण से होना चाहिए अतः नाट्य साहित्य सृजन ही नाटक की प्रथम विशेषता है। बिना पटकथा के मंच पर

अवतरित खेल प्रदर्शन मात्र है न की परम्परागत नाटक। एक सशक्त पटकथा सफल का नाटक धरातल है। पटकथा लिखते समय ही लेखक उसको मूर्तिमान करने की परिकल्पना अपने लेखन में उद्धृत कर देता है जिसका उपयोग बाद में निर्देशक द्वारा किया जाता है।

सफल पटकथा के पश्चात नाटक की दृश्य विशेषता, 'दृश्य' आरंभ होता है। सर्व प्रथम मंचन हेतु नाट्य साहित्य के पात्रों के अभिनय हेतु कलाकारों का चयन (casting) किया जाता है। पटकथा में वर्णित चारित्रिक विशेषताओं के अनुरूप कलाकारों का चयन नाटक को सफल बनाने की प्रमुख आवश्यकता है। कलाकारों को पात्रों की भूमिका में निश्चित कर लेने के पश्चात अभिनय आरंभ होता है। अभिनय एक ऐसा माध्यम है जहाँ दृश्य के साथ श्रव्य की विशेषता का भी समावेश होना आरंभ हो जाता है। अभिनेयता एवं संवाद शैली किसी भी नाटक के प्राण हैं।

दृश्य-श्रव्य की विशेषता के प्रस्तुतिकरण हेतु अनेकानेक माध्यमों का प्रयोग किया जाता है जिसमें के परिधान (costumes), शृंगार (make up), मंच सज्जा,(stage decoration), प्रकाश व्यवस्था (lights), ध्वनि व्यवस्था (sound), व्यवसायिकता (marketing) आदि जिसे द्वितीय इकाई में बहुत ही विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। अतः यहाँ उनको अधिक विस्तार न देते हुए प्रकरण को संक्षेप में समाप्त करेंगे।

३.४ सारांश

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है नाटक की विशेषता के रुप में लिखित दृश्य और श्रव्य का सुंदर समन्वय ही नाटक है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण नाटक प्राचीन काल से आज तक एक प्रिय विधा बना हुआ है। आज के अति आधुनिक मनोरंजन के साधनों के होते हुए भी नाटक की महत्ता कम नही हुई है।

इस इकाई में नाटक के तत्व और विशेषताओं पर विचार-विमर्श किया गया। नाटक के तत्वों पर विचार करते समय हिंदी के प्रसिद्ध नाटकों से उदाहरण भी लिए गए जिससे सैद्धांतिक तथ्यों को अधिक स्पष्टता से समझा जा सके। इस इकाई द्वारा पाठकों को नाटक जैसी प्रचलित विधा को अपने सभी घटकों के साथ समझने में सहायता मिलेगी।

अंततः इस अध्याय द्वारा छात्रों को नाटक की परिभाषा और अर्थ समझाने का प्रयास किया गया साथ ही नाटक के प्राचीन संदर्भ का विशेष रूप से अध्ययन किया गया। हिंदी भाषा में नाटकों की रचना के उद्भव और विकास का साहित्य के इतिहास के परिपेक्ष्य में अध्ययन किया गया। इसके साथ ही पहली इकाई में नाटक के प्रकारों पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया। द्वितीय इकाई में नाट्य साहित्य के साथ ही नाटक के सबसे महत्वपूर्ण घटक के रुप में रंगमंच पर विमर्श किया गया। नाटकों के लेखन में रंगमंचीय तत्वों, निर्देशों एवं कोष्ठकों का अध्ययन किया गया। तत्पश्चात रंगमंच के विभिन्न घटकों पर विचार किया गया। साथ ही साहित्यिक एवं व्यवसायिक नाटक मंडलियों के उद्भव और विकास पर भी प्रकाश डाला गया। इस इकाई के अंत में रंगमंच में नाटकों के मंचन से संबंधित समस्याओं पर भी विचार किया गया।

अंतिम इकाई में नाटक के तत्व और विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। अंतिम इकाई में नाटक के तत्व और विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।।इन माध्यम में व्यक्त विवेचन के अतिरिक्त छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि अन्य पुस्तकों एवं उल्लेखित नाटकों का भी अध्ययन करें। नाटक जैसी रोचक विधा का अध्ययन सदा ही सुरूचीपूर्ण रहा है। अत: छात्रों के लिए उपरोक्त विवेचन एवं विचार लाभकारी होंगे।

३.५ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

१) नाटक के तत्वों पर सोदाहरण चर्चा कीजिए।

२) नाटक के किन्हीं तीन तत्वों पर सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत कीजिए।

३) "नाटक के सभी तत्वों में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है संवाद" - उक्त कथन का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिए।

४) "रंगमंचीयता नाटक को जीवंत कर देती है " उपरोक्त कथन को उदाहरणों के माध्यम से सिद्ध कीजिए

५) हिंदी नाट्य साहित्य के प्रमुख तत्वों एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालिए

३.६ टिप्पणियां

१) नाटक में कथानक का महत्व

२) नाटक में पात्र नियोजन

३) नाटकों में पात्रों का चरित्र-चित्रण

४) नाटकों में संवाद

५) नाटक में भाषा प्रयोग

६) नाटक में स्थान और काल नियोजन

७) नाटक में उद्देश्य का महत्व

८) नाटक में संकलनत्रय

*****

४

प्रयोगधर्मी नाटक का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

४.० इकाई का उद्देश्य

४.१ प्रस्तावना

४.२ नाटकों में प्रयोगधर्मिता की अवधारणा

४.३ नाटकों की प्रयोगधर्मिता का स्वरूप

४.४ सारांश

४.५ लघुत्तरीय प्रश्न

४.६ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

४.७ संदर्भ ग्रंथ

४.० इकाई का उद्देश्य

आज वर्तमान युग में बदलते जीवन संदर्भों को अभिव्यक्त करने के लिए कला को प्रयोगधर्मी रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता जान पड़ती है। नाटक कला अपनी शिल्प विधि के कारण अपने प्रभावोत्पादकता को सिद्ध करने में सफल होता है। प्रयोगधर्मिता के कारण नाटककार, रंगमंचकार और दर्शक के बीच एक सहज समझ विकसित होती है। अत: इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है:

- नाटक में प्रयोगधर्मिता के स्वरूप की जानकारी।
- प्रयोगधर्मिता के विभिन्न स्तर।
- नाटक में प्रयोगधर्मिता का महत्व।

४.१ प्रस्तावना

शुरुआत से ही तकनीक रंगमंच का एक आवश्यक हिस्सा के रूप में जाना जाता रहा है। यदि हम नाटकों के रंगमंच के मूल तत्वों की बात करें तो उसके अंतर्गत आलेख, अभिनेता, रंग तकनीक जिसमें मंचसज्जा, रूपसज्जा, वेशभूषा, उपकरण, रंग संगीत और अंतिम में दर्शक इत्यादि का समावेश होता है। इन सब में सबसे महत्वपूर्ण तत्व तकनीक का है जिसके माध्यम से नाटकों में प्रयोगक्षमता बढ़ती है। नाटक एक सर्जनात्मक और प्रयोगपरक कला मानी जाती है, इसी कारण वह लोकमनोरंजन, लोक शिक्षण के रूप में एक सशक्त माध्यम की भूमिका निभाता है। हिंदी रंगमंच-नाटक का जिस प्रकार का रूप स्वरूप विधान आज हमारे समक्ष उपस्थित है वह एक तरह से समय-समय पर आए हुए परिवर्तन और प्रयोगधर्मिता का ही परिणाम है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद रंगमंच ने नए आयाम स्थापित कर

नए धरातलों को छूने की कोशिश की है। सबसे पहले हमें जानने की आवश्यकता है कि यह प्रयोग और प्रयोगधर्मिता क्या है जिसको हम अंग्रेजी में एक्सपेरिमेंट और एक्सपेरिमेंटालिज्म कहते हैं। यह सर्व विदित है की साहित्य में प्रयोगों का महत्व निर्विवाद है। प्रयोग के अभाव में साहित्य में एक प्रकार से अवरोध उत्पन्न हो जाता है। प्रयोगशीलता न केवल रचनाकार की क्षमता और प्रतिभा का प्रमाण है। वह किसी भी कला विधा की अनिवार्य आयाम के रूप में जाना जाता है। नाटक एक प्रकार से दृश्य काव्य है अतः नाटक के क्षेत्र में प्रयोगधर्मिता और भी विचारणीय एवं प्रासंगिक है। मोहन राकेश रचनाकार के स्वतंत्र तथा रंगकर्म में प्रयोगधर्मिता को अधिक महत्व देते हैं।

४.२ नाटकों में प्रयोगधर्मिता की अवधारणा

संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से 'प्र' उपसर्ग के साथ 'यजु' धातु में 'तन' प्रत्यय लगाने से प्रयोग शब्द बना है और कुछ ग्रंथों में इसका अर्थ दिया गया है कि कर्मठता, अनुष्ठान, निदर्शन तथा अभिनव आदि दिया गया है नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में प्रयोग का महत्व अत्यंत निर्विवाद है भारतीय नाटक शास्त्र परंपरा में प्रयोग शब्द का अर्थ नाटक का अभिनय के रूप में लिया जाता है। भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार शास्त्र का रंगमंच पर कर्म में रचनाकार ही प्रयोग है। अभिनव गुप्त ने इसी को प्रेक्षकों के आगे प्रकृटीकरण कहा है। आमतौर पर प्रयोग को अंग्रेजी में एक्सपेरिमेंट के अर्थ में ग्रहण कर हम नाटक और रंगमंच की आधुनिक आधुनिक समीक्षा में प्रवेश करते हैं। नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में रूढ़ियों के बहिष्कार के साथ नवीन प्रवृत्तियां और अप्रचलित या अपूर्वतत्वों के समावेश को हम प्रयोग कर सकते हैं और प्रयोग करने के लिए एक नाटक की प्रस्तुति, उसी की पूर्व की गई प्रस्तुतियों की तुलना नवीनता लिए रहती है अन्यथा नाटक का प्रयोग या प्रस्तुति अनाकर्षण सिद्ध होगी। जब भी आधुनिक हिंदी नाटकों की बात करें तो उसकी शुरुआत भारतेंदु युग से मानी जाती है भारतेंदु हरिश्चंद्र के कृतित्व से भारतीय रंगमंच को एक गरिमा और पहचान मिलती है। फारसी रंगमंच के विरोध में हिंदी नाट्य रचना की और उन्मुख होकर भारतेंदु ने अंधेर नगरी में एक नई नाट्य परंपरा की सार्थक खोज की है। भारतेंदु मेरे प्राचीन पंथी नहीं थे और ना ही नवीनता के अंधभक्त। उन्होंने संस्कृत नाटकों व नाट्यशास्त्र को एवं परंपरा को अक्षरस: भाषा के क्षेत्र में उन्होंने युग के अनुकूल आधुनिकता को आश्रय दिया। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भारतीय एवं उदय शंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, जगदीश चंद्र माथुर, धर्मवीर भारती और मोहन राकेश आदि की कृतियों से हिंदी नाटक में प्रयोगधर्मिता का दौर शुरू होता है। ये नाटककार नाटक में नवीन विषय तथा रंग प्रयोग की नजरिये से अवतरित हुए। अस्तित्व वादी नाट्य परंपरा और विसंगति नाट्य शैली की परंपराएं विकसित हुई। इन नाटककारों ने न केवल अपनी किसी एक अछूती प्रवृत्ति द्वारा नाट्य साहित्य में अपनी पहचान नहीं बनाई बल्कि उनके नाटक नाट्य परंपरा के पुनराविष्कार और अनेक नए प्रवृत्तियां के दिशा दर्शक हैं। व्यक्तिवादी मोहन राकेश के कृतित्व से उभरने वाली विशिष्ट प्रवृत्ति है ।उनके नाटकों में भारतीय परिप्रेक्ष्य में अस्तित्व वादी दर्शन की परिणितियां देखी जा सकती है। उनके नाटकों में व्यवस्था के दबाव से छटपटाते व्यक्ति के संशय, द्वंद्व तथा चुनाव की आजादी जैसा विषय बनाया गया है। आधुनिक हिंदी नाटकों की व्यक्तिवादी अस्तित्व वादी असंगत नाट्य शैली नवीन सामाजिक राजनीतिक संबंधों के निरूपण की प्रवृत्तियों का अपेक्षाकृत अधिक संतुलित और प्रयोगात्मक नई दृष्टि के साथ

प्रयोग करने वाले कई प्रतिभाशाली नाटककारों में मणि मधुकर, सुरेंद्र वर्मा, विपिन कुमार अग्रवाल, रमेश बक्षी, भीष्म साहनी, मृणाल पांडे, मृदुला गर्ग, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, दया प्रकाश सिन्हा, बृजमोहन शाह, रामेश्वर प्रेम आदि उल्लेखनीय हैं। वस्तु शिल्प, नाट्य शिल्प और रंग शिल्प की दृष्टि से प्रसादोत्तर युगीन हिंदी नाटकों में निरूपित नवीन प्रवृत्तियों की निष्पत्ति के द्वारा उभरने वाली प्रयोग की नई दिशाओं की गणना चार वर्गों में की जा सकती है। पहले है-काव्य नाटक में मिथक तथा इतिहास की नवीन व्याख्या। दूसरा -व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी परंपरा का प्रभाव। तीसरा है विसंगत नाटक और चौथा है अंतिम लोक नाट्य और लोक कथाओं से प्रभावित नाटक। यह प्रवृत्तियां हिंदी नाटकों के प्रयोगधर्मिता की नई दिशाएं उन्मीलित करती हैं। लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेंद्र वर्मा और शंकर शेष के नाट्य प्रवृत्तियों में व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। मोहन राकेश की रचनाओं में विशेष रूप से नई प्रयोगधर्मिता के साथ व्यक्तित्ववादी और अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन हुआ है। आधुनिक हिंदी नाटकों के विकास में प्रयोग धर्मिता के महत्व के विवेचन से स्पष्ट होता है कि नए प्रयोगों का विकास तीन स्तरों पर दिखाई देता है। वस्तु शिल्प के स्तर पर, नाटक शिल्पी के स्तर पर और रंग शिल्प के स्तर पर। यह तीनों स्तर परंपराओं के अनुपात में दिखाई देते हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। तीनों प्रकारों से समन्वित समग्र प्रयोगधर्मिता के द्वारा नए विषयों का निरूपण करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इन नाटककारों ने पुरख्यानों की आधुनिक संदर्भों के अनुकूल ढंग से व्याख्या की है। नाटक के साहित्यिक और रंगमंचीय स्वरूप को जोड़ने में नाट्य शिल्पगत प्रयोगों का ज्यादा महत्व होता है। वस्तु शिल्प और रंग शिल्प दोनों को प्रभावशाली बनाने में शिल्पगत प्रयोग सहायक दिखाई देते हैं। गीत योजना, स्वागतोक्तियां भी इसी के अंतर्गत समाविष्ट होती है। रंग शिल्पगत प्रयोग मूलतः रंगमंच से संबंध रखते हैं विश्व के सभी श्रेष्ठ नाटकों में इन तीनों प्रकार के प्रयोगों का समान रूप में निर्वाह दिखाई देता है। हिंदी की आधुनिक नाट्य परंपरा में भी धर्मवीर भारती मोहन राकेश की कृतियों में प्रयोग के इन तीनों प्रकार के प्रयोग समन्वित रूप से प्रयोग धार्मिता दिखाई देती है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है समाज, कला, संस्कृति और साहित्य में जन्म लेने वाली नई प्रवृत्तियां ही किसी भी नाट्य कृति की रचना प्रक्रिया में प्रयोगधर्मिता के स्रोत के रूप में रहती हैं। नई प्रवृत्तियों से प्रयोग का घनिष्ठ संबंध रहता है। साहित्यकार की रचना प्रक्रिया में प्रतिफलित होती है और उनकी परिणीति साहित्य में नए प्रयोगों के रूप में दिखाई देती है हिंदी नाट्य कारों ने अपने युगीन परिवेश से नई प्रवृत्तियों को ग्रहण करके प्रयोग धर्मिता के नए आयामों में रूपांतरित किया है। पारिवारिक विघटन तथा महानगरीय जीवन में स्त्री पुरुष के संबंधों के नए रूपों की तथा अस्तित्व वादी दर्शन के प्रभाव में मोहन राकेश जैसे संवेदनशील रचनाकारों को नाटक के प्रयोग की नई दिशाएं खोजने के लिए प्रेरित किया है।

सबसे पहले हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि प्रयोग क्या है और प्रयोग धर्मिता क्या है। यह सभी लोग जानते हैं कि साहित्य में प्रयोगों का महत्व निर्विवाद है। प्रयोगशीलता के अभाव में साहित्य के क्षेत्र में गत्यावरोध आ जाता है। प्रयोगशीलता न केवल रचनाकार की क्षमता और प्रतिभा का प्रमाण है बल्कि वह किसी भी कला विद्या का नितांत अनिवार्य आयाम भी है। हम सभी जानते हैं की नाटक एक दृश्य काव्य है अतः नाटक के क्षेत्र में प्रयोग धर्मिता और भी अधिक विचारणीय तथा प्रासंगिक है। मोहन राकेश रचनाकार के स्वतंत्र तथा रंगकर्म में प्रयोग धर्मिता को अधिक महत्व देते हैं इस नजरिए से आधुनिक युग में

नाट्य साहित्य में मोहन राकेश का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिक नाटक के मसीहा मोहन राकेश भी यही कहते हैं। इसके अलावा वे उसके युग और बोध से जहां तक हो सके आगे है इसमें दो राय नहीं है। और ऐसे इन्होंने युग दृष्टा रचनाकार के दायित्व होते हैं उसका वे पूर्णता निर्वाह करते हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आधुनिक नाटक और रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में प्रयोग की पारंपरिक अर्थ को परिणीति उक्त विशिष्ट अर्थ में अत्यंत सुसंबद्ध और सुसंगठित प्रमाणित होती है। इससे यह बात स्पष्ट रूप से देखने में आती है कि नवीनता का अर्थ नाटक और रंगमंच का प्राण है। प्रस्तुतीकरण में नवीनता का योग हो जाना एक तरह से प्रयोग है। असलियत में नवीनता या आधुनिकता प्रयोग धर्मिता का ही एक तत्व माना जाता है। परंपरा से रूढ़ी अथवा स्थिर अपरिवर्तनीय तत्वों का आशय ले लिया जाता है जबकि प्रयोग धर्मिता नवोन्मेष प्रयोगशीलता तथा गत्यात्मकता उसे अर्थ देती है। जबकि सतहिता, परंपरा और प्रयोग धर्मिता परस्पर विरोधी तत्व प्रतीत होते हैं लेकिन इन दोनों का कथित विरोध वास्तविक नहीं है ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू कह सकते हैं साहित्य कल और संस्कृति के क्षेत्र में परंपरा तथा प्रयोग धर्मिता में साम्य तथा वैष्मय ही नहीं पारस्परिक अंतःक्रिया भी देखने को मिलती है। साहित्यिक परंपरा में परिवर्तन की दिशाएं इंगित करने वाले प्रयोग में स्वछंदता का तत्व रहता है लेकिन वह अपनी परंपरा से पूरी तरह से मुक्त नहीं हो सकता है प्रयोग परंपरा की प्रक्रिया है फिर भी परंपरा पर आश्रित होता है क्लासिक में परंपरा अपने उत्कृष्ट परिणति प्रकट करती है और स्वच्छंदता वादी रचनाओं में प्रयोग। प्रयोग में नवीनता और आविष्कृत के तत्व अनिवार्यता होते हैं परंपरा प्रयोग को अपनी विरासत की समझ देती है और परंपरा पर आश्रित होती है। साहित्य के क्षेत्र में प्रयोग विकास का साध्य नहीं एक प्रकार से साधन है और मौलिकता उसका अनिवार्य गुण है नवीनता की खोज करना प्रयोग की प्रकृति है।

४.३ नाटकों की प्रयोगधर्मिता का स्वरूप

वर्तमान समय में आधुनिक रंगमंच को शामिल किया जाता है जिनके अंतर्गत शास्त्रीय रंगमंच, लोक रंगमंच का भी समावेश किया जाता है। अर्थात जैसे कुछ हमारे अपने समय में पिछले ४०-५० वर्षों में हो रहा है। इसे हम

समकालीन रंगमंच की श्रेणी में रख सकते हैं। आज हमारे सामने तीन अलग-अलग दौर में रंगमंचों में अलग-अलग तकनीकी रूप दिखाई देता है। ५० से 70 का दौर जो कि पहले २० वर्ष ऐसे हैं जिसमें हिंदी रंगमंच का सामना होता है वह मुख्य रूप से यथार्थवादी रंगमंच का दौर है। ५० से लेकर ७० के बीच में हमें दिखाई देता है कि मोहन राकेश, भीष्म साहनी, शंकर शेष, सुरेंद्र वर्मा जैसे हिंदी के बड़े से बड़े नाटककार जिन मुहावरों में अपने नाटकों की रचना कर रहे थे शुद्ध यथार्थवादी मुहावरे थे। इन नाटकों में एक तरह से जीवन की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इनके मुहावरे कथन की अभिव्यक्ति करते हैं। जिन मुहावरे में हम अपने जीवन की वास्तविकता दिखाते हैं, अपने हाव-भाव प्रदर्शित करते हैं। अपने कथ्य की अभिव्यक्ति इसी तरह मुहावरों में सारे नाटककार दे रहे होते हैं। जाहिर सी बात है वे इसी दौर की जो भी तकनीक या प्रविधियां हैं वे इसी के साथ सहयोग कर रही हैं। जैसे मंच सज्जा इस दौर में एक बहुत महत्वपूर्ण तत्व है। इसके अलावा प्रकाश सज्जा वेशभूषा पूरी एक यथार्थवादी परिकल्पना के साथ और रंग संगीत भी कहीं ध्वनि के तौर पर कहीं टिप्पणी के तौर पर और कहीं एक व्याख्या के तौर पर संगीत के रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत

होता है। इस प्रकार यथार्थवाद में उसके जो भी प्रस्तुति की आयाम हैं उनको तकनीक इंगित करती है और साथ-साथ चलती भी है जैसे नाटक के शुरुआत में अंधकार उसके बाद प्रकाश फिर संगीत और अभिनेता की गतियां और इन गतियां को पकड़ता हुआ प्रकाश उसकी वेशभूषा और मंच सज्जा के नाम पर हो सकता है कि वह ड्राइंग रूम बैडरूम क्लास रूम किचन सेट हो तो तकनीक भी इस यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत करने की कोशिश करती है। १९५० से लेकर १९७० का दौर अनवरत रूप से कम- ज्यादा हर नाटक और हर नाटककार की रचनाओं में प्रस्तुत होता है। उनकी प्रस्तुतियां भी इसी यथार्थवादी कवच के दायरे में बंधी हुई दिखाई पड़ती है। लेकिन १९७० आते-आते रंगमंच के बड़े-बड़े चिंतक सर्जक कलाकारों के मन में एवं दार्शनिक तौर पर इस सोच ने जन्म लिया कि हम आजाद हो गए हैं। १९४७ में देश आजाद हुआ हमने अपनी स्वयं शासन पद्धति की शुरुआत की तो कलाओं के क्षेत्र में हमारा अपना निजी क्या है? हमारा अपना क्या है जिसको हम दोबारा शुरू कर सकते हैं। यथार्थवाद को हमने पश्चिम से ग्रहण किया और उसी के आधार पर हम नाट्य रचना कर रहे हैं हम क्यों नहीं अपने देश की पुरानी नाते परंपराओं की ओर जैसे कि लोकनाट्य परंपरा शास्त्रीय नाटक परंपरा और उनके कुछ विशेष तत्वों को लेकर नए नाटकों की रचना का काम प्रारंभ कर सकते हैं। सन १९७० के आसपास हिंदी के साथ-साथ कई भाषाओं में ऐसे नाटक लिखे गए जो अपनी संरचना में लोकनाट्य तत्वों का उपयोग कर रहे हैं। जैसे मराठी भाषा में विजय तेंदुलकर का 'घासीराम कोतवाल', गिरीश कर्नाड का कन्नड़ में 'हयवदन', हिंदी में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', मणि मधुकर का रस गंधर्व इत्यादि। इन सभी नाटककारों ने अपने-अपने क्षेत्र की लोकनाट्यशैलियों में कुछ-कुछ तत्वों का उपयोग करते हुए आज के कथानक को अपने नाटकों में शामिल करते हुए हमारे सामने रखने का प्रयत्न किया। इन सभी नाटककारों ने गीत संगीत पोरस का उपयोग, सूत्रधार का नाटक में चले आना और सूत्रधार के द्वारा नरेशन किया जाना, बीच-बीच में कथानक को रोककर गायको द्वारा उसके ऊपर कोई टिप्पणी करना और संगीत मंडली को मंच पर ही बिठा देना इन सारे तत्वों का इस्तेमाल किया।

नाटक के शुरुआत में अभिनेता और अभिनेत्री दर्शकों के सामने आकर नाटक का परिचय देते हैं। उनके जो भी संवाद हैं वह इस नौटंकी की गायकी में है। इसके बाद मूल रचना का या मूल नाटक की शुरुआत होती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' नाटक एक राजनीतिक कथानक को लेकर लिखा गया है। इसमें यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि किस तरह चुनाव के समय अलग-अलग पार्टियों और उनके नेता जनता से वोट मांगने के लिए उनको बरगलाते हैं, फुसलाते हैं। यहां तक की इस नाटक में यह भी दिखाया गया है कि गांधी जी को और गांधी जी की बकरी को एक बहाने के रूप में प्रयोग करते हुए जनता को अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया है।

आज प्रयोगधर्मी नाटकों में नाटकों के कथानक व्यक्ति, राजनीति और समाज से संबंधित हैं। नौटंकी जैसे तत्वों का उपयोग करते हुए और बहुत ही आकर्षक और मोहक ढंग से दर्शकों के समक्ष रखने की कोशिश नाटककारों ने किया है। हमें यह पता होना चाहिए कि नौटंकी एक तरह से हमारी परंपरा का अभिन्न अंग रहा है और आज भी यह मौजूद है। जिसके कारण एक आधुनिक नाटक में इन सभी तत्वों का उपयोग करते हुए उसके कथानक को सहजता से ग्रहण करते हुए नाटक में ज्यादा से ज्यादा रुचि लिया जाता है। इसके उदाहरण हमें राजस्थान के नाटककार मणि मधुकर का नाटक 'रस गंधर्व' में मिलता है जिसमें उन्होंने

राजस्थान की लोकनाट्य शैली ख्याल तत्व का उपयोग किया है। इसमें कथा वाचन, नृत्य, संगीत और एक लोक कथा माध्यम से किया जाता है। यह परंपरा लगभग सदियों से चली आ रही है। समकालीन हिंदी रंगमंच में १९७० से लेकर १९९० के दरम्यान बहुत से नाटक लिखे गए। यह सभी नाटक हिंदी में भी लिखे गए और हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं में भी लिखा गया।

प्रयोग धर्मी नाटकों में रंगमंच का एक ऐसा भी दौर आया जो बहुत ही आकर्षक और मोहक रंगमंच को पैदा करने में सफल रहा, इसके अलावा तकनीक ने रंगमंच को मोहक प्रस्तुति में अपना अधिक से अधिक योगदान दिया। नवे दशक में हम देख सकते हैं कि भारतीय समाज में दूरदर्शन का प्रसार तेजी गति से हुआ। प्रमुखत: फिल्में एकाएक उभर कर आने लगी। दूरदर्शन पर पहला धारावाहिक 'हम लोग' प्रसारित किया गया। एक तरह से हमारे आम जिंदगी और रोजमर्रा के जीवन में फिल्म और दूरदर्शन इसके अलावा धीरे-धीरे कंप्यूटर मोबाइल, वीडियो इन सारे तत्वों का आगमन बड़े जोर शोर से होता है। आमतौर पर देखा जाए तो ७० से लेकर ९० तक अगर लोकमंच का दौर था तो ९० से लेकर आज तक का जो रंगमंच हमारे सामने दिखाई देता है उसमें नई रंग तकनीकी की उपस्थिति देखने को मिलती है। आज के रंगमंच में काफी बदलाव आ रहे हैं जिसके अंतर्गत रंगमंच पर किसी प्रस्तुति में हमें बहुत से टेलीविजन के सेट रखे हुए देखने को मिल जाएंगे। रंगमंच पर जो अभिनेता है वह अपने जीवित रूप में हमारे सामने हाजिर है ही किंतु उसकी विविध प्रकार की छवियां मंच पर रखे हुए १०-१५ टीवी के सेट भी दर्शकों को दिखाई पड़ती रहती हैं। एक तरह से फिल्म भी रंगमंच का अंग बन चुका है। नाटक का एक हिस्सा जीवित कलाकारों के मध्य में घटित हो रहा है तो पीछे पर्दा लगा हुआ भी है, जिस पर किसी फिल्म का ऐसा अंश जो रंगमंच या नाटक का कथानक है चलता रहता है। यदि वह उससे जुड़ा हुआ है तो उसके साथ-साथ वह भी दिखाया जाता है। मुख्य रूप से हमारे सामने १९५० से लेकर आज तक के रंगमंच के जो तीन तरह के रूप दिखाई देते हैं उनके बारे में विस्तार थे बातचीत करने की कोशिश की गई और उसमें भी तकनीकी और तकनीक के अलग अलग तत्व किस तरह से अपनी मौजूदगी रखते हैं उसके विषय में हमें पता चला। इन सभी से यह पता चलता है कि पहले यथार्थवादी उसके बाद लोकनाट्य तत्व से युक्त रंगमंच और अंततः सभी कलाओं का आपस में मेल-जोल किस प्रकार से हुआ उसके बारे में एक चित्र हमारे सामने दिखाई देता है। जाहिर है कि हर समय अलग-अलग नाटककार होते हैं। अपने-अपने समय में अलग-अलग निर्देशक, अभिनेता, डिजाइनर इत्यादि हैं। जिन्होंने एक प्रकार से अपनी पहचान स्थापित की। यह तभी संभव हो पाया जब हर बार एक नई रंग तकनीक से हम सभी का साक्षात्कार हुआ। रंगमंच जैसे मध्यम की यही एक खासियत है कि वह अपने समय के साथ अपने आप को बदलता रहता है। और इस बदलाव में जितना बड़ा योगदान नाटककार और अभिनेता का रहता है उससे काम बड़ा योगदान नई-नई रंग युक्तियां और नई-नई रंग तकनीक का नहीं होता। एक तरह से वह भी समान भागीदारी रखती है। यह सभी चीजें मिलाकर एक संपूर्ण रंग मंच को हमारे सामने उपस्थित कर देती है। इस प्रकार से हमें समकालीन हिंदी रंगमंच में प्रयोग धर्मी के क्षेत्र में नए रंग तकनीक का स्वरूप पता चलता है और इसका एक स्पष्ट अंदाज़ा हो जाता है। रंगमंच के विषय में अक्सर तकनीक को लेकर प्रश्न उठाया जाता रहा है। इसमें कोई संशय नहीं की तकनीकी सबसे जरूरी हिस्सा होता है। अक्सर कई बार ऐसा भी होने लगता है कि तकनीकी हावी हो जाती है और जो जीवंत

अभिनेता मंच पर मौजूद है वह एक तरह से पृष्ठभूमि में चले जाता है। नई रंग तकनीक के बारे में जानकारी प्राप्त करते हुए हम इस तरफ भी अपना ध्यान खींचने की कोशिश करेंगे कि खासकर तीसरे दौर की प्रस्तुतियों में कुछ परिस्थितियों इस तरह की भी सामने आई हैं जिनमें फिल्म वीडियो दूरदर्शन जैसी नई रंग तकनीकी ने भी अपनी मौजूदगी दर्ज की और साथ ही साथ इतना ज्यादा हावी हो गई कि मंच पर इन नई रंग तकनीक के सामने जो जीवन अभिनेता है उनकी तरफ लोगों का ध्यान धीरे-धीरे कम हो गया। एक तरह से यह स्वाभाविक भी है कि जब कोई प्रस्तुति हो रही है और उसमें अगर कोई नया तत्व सामने आता है तो वह दर्शकों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करता है बजाय इसके की तत्व पहले से मौजूद है लोग उसकी तरफ ध्यान दें। हम इस खतरे को समझते हैं। इसकी तरफ संकेत किया जाना चाहिए कि हम नहीं रंग तकनीक का उपयोग तो करें लेकिन इस बात के लिए भी सावधान रहना होगा कि वह नाटक के मूल कथानक पर हावी न होने पाए और नाटक में जो सबसे महत्वपूर्ण तत्व है अर्थात अभिनेता उसकी हाईलाइट करने का काम करें। उसको एक तरह से आगे लाने का काम करना चाहिए ना कि वह खुद खुद महत्वपूर्ण होता जाए और नाटक का कथानक और अभिनेता विरोध में चले जाएं। यदि ऐसा होने लगेगा तो रंगमंच और फिल्म में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। हम रंगमंच पर अगर इन नई तकनीक का इस्तेमाल कर रहे हैं तो इसलिए कर रहे हैं कि रंगमंच की प्रस्तुति अधिक से अधिक असरदार हो सके। ज्यादा से ज्यादा आकर्षक बने और नाटक के कथानक को आगे लाने में हमारी मदद करें। इसमें कोई शंका की बात नहीं की फिल्म अलग माध्यम है और रंगमंच अलग। इन दोनों में अभिनय का एक हिस्सा होता है। फिर भी दोनों की तकनीकी अलग-अलग है। रंगमंच में फिल्म आ रही हो तो उसे रंग मंच के नियमों के तहत आना होगा न कि रंगमंच में फिल्म का आना। रंगमंच को सभी तरह से खत्म करने के लिए नहीं होना चाहिए यह प्रश्न २१वीं शताब्दी में नई-नई रंग तकनीक के आ जाने के कारण रंगमंच के अस्तित्व को लेकर उठाया गया है कि इन नई-नई तकनीक के कारण रंगमंच बहुत दिनों तक जिंदा रह सकता है क्या?

इन सभी बातों से यह जान सकते हैं कि रंगमंच का इतिहास कैसा था। १८९५ में फिल्मों का जन्म हुआ उसके बाद १९५० के आसपास दूरदर्शन आया और १९८०-१९९० के आसपास कंप्यूटर आया। इसके बाद मोबाइल आया। यह सारे माध्यम हमें दिखाई दे रहे हैं किंतु इन सभी माध्यमों का तेजी से स्वरूप भी बदल रहा है। आज जो मोबाइल हमारे सामने है कुछ दिनों बाद बिल्कुल निरर्थक साबित होने लगेगा। कई विद्वान रंगमंच की तुलना फिनिक्स नामक पक्षी के करते हैं जिसे अग्नि पक्षी भी कहा जाता है। यह उसे अग्नि पक्षी की तरह है जो बार-बार आग में जलकर भस्म होता रहता है और राख में से उठकर फिर जिंदा होता है। इसी तरह रंगमंच भी इतना शक्तिशाली माध्यम है कि वह कभी समाप्त नहीं होने वाला क्योंकि जब तक आदमी की उपस्थिति मौजूद है तब तक आदमी जिंदा है इसके साथ ही साथ रंगमंच जैसा माध्यम भी जीवित है और हमेशा रहेगा।

अगर हम नाटकों में प्रयोग धर्मिता का प्रश्न करते हैं तो परंपरा और प्रयोग धर्मिता के अंत संघर्ष नहीं नाटक को एक नया रूप प्रदान किया यह देखने में आता है। संवेदन और शिल्प ने ही नाटक को विविधरंगी बनाया। नाटकों के क्रमिक विकास की बात करते हुए यदि हम वैदिक काल की ओर ध्यान आकृष्ट करें तो संस्कृत नाटकों में भी एक प्रकार का प्रयोग धर्मिता दिखाई देती है। वेदों में यम- यमी, पुरुरवा-उर्वशी, अगस्त्य- लोपामुद्रा इत्यादि के जो

संवाद सूक्त हैं उनमें नाटकीय कथोपकथन के गुण दिखाई देते हैं। नाटकीय प्रयोग के बारे में संबंध रखने वाली अनेक धार्मिक क्रियाओं का उद्भव वैदिक कर्मकांडों से उत्पन्न हुआ है। नाटक की उत्पत्ति भले ही वैदिक संवाद सूक्तों के माध्यम से हो लेकिन नाटक ने शरीर पुराणों से ही पाया है। पौराणिक नाटकों की रचनाओं के मुख्य आधार कहीं धर्म प्रतिपादन कहीं युद्ध, कहीं वध, कहीं खेल तो कहीं काम का वर्णन कर रहे हैं। उसे समय के नाटककार चाहे अश्वघोष हो चाहे भवभूति या कालिदास। इन सभी की रचनाओं का मुख्य आधार महाभारत की घटनाएं ही रही हैं। भास के तेरह नाटकों में से नौ नाटकों का आधार तो महाभारत या रामायण रहा है। संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले कवि कालिदास का नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम हो या भवभूति का उत्तररामचरितम् उनमें अधिकतर रामायण-महाभारत की घटनाओं का ही नाट्य रूपांतरण किया गया दिखाई देता है। समय-समय पर प्रयोग भी किया हुआ दिखाई देता है। नाटक के सभी तत्व उनमें दिखाई देते हैं समय के अंतराल के साथ एक परिवर्तन यह भी हुआ कि इन नाटकों की स्वाभाविकता धीरे-धीरे लोप होने लगी। और इनमें रूढ़िवादिता उभर कर सामने दिखाई देने लगी। नाटकों के संवादों की भाषा कठिन होने लगी रोजमर्रा जीवन की भाषा और नाटक की भाषा की खाई निरंतर बढ़ने लगी। नाटक आम आदमी से हटकर विशिष्ट वर्ग के लिए रह गया उसका परिणाम या हुआ की संस्कृत नाटकों के रंग मंच का पतन प्रारंभ हो गया लेकिन संस्कृत के नाटकों ने नाटक की जिन परंपराओं को जन्म दिया। एक लंबे समय तक भी परंपराएं हिंदी नाटक को प्रभावित करती हुई दिखाई देती हैं।

हमारे इन शास्त्रीय नाटकों की ही देन पौराणिक काल स्वरूप और प्रासंगिकता भरत वाक्य व पूर्व रंग आदि परंपराएं रही हैं। यह परंपराएं एक लंबे समय तक मौजूद रही। और हमारी लीला और लोकनाट्य में तो यह आज भी विद्यमान है। लीला नाटकों के प्रसंग महाकाव्यों से लिए गए हैं। हमारी लोकनाट्य शैलियों ने इन महाकवियों के उपप्रसंगों को लिया है। इन प्रसंगों के पात्रों की अलौकिकता और उनमें दिखाई देने वाली आस्था है दर्शकों का प्रयोजन रहा है। इनका मूल्य उद्देश्य संप्रेषण ही रहा है। हमारे लीला नाटकों की तुलना में लोकनाट्य शैलियों में सार्थक प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। उनके मूल उद्देश्य में संप्रेषण ही रहा है। लीला नाटकों की तुलना में लोकनाट्य शैलियों में सार्थक प्रयोग किए जाते हैं। यदि हम इन प्रस्तुतियों की बात करें तो संपूर्ण प्रस्तुति आंगिक अभिनय गायन और संवादों पर आधारित होती है। रंगमंच सज्जा तो होती ही नहीं है। क्योंकि उनके प्रदर्शन खुले स्थानों पर होते आए हैं। हां रंगभूषा और रूप सज्जा उनके प्रदर्शन के सहायक तत्व जरूर होते हैं। ध्यातव्य है कि उनके आलेख और प्रस्तुति में बड़ा अंतर दिखाई देता है। आलेख बहुत छोटा होता है और प्रस्तुति उससे १० गुना अधिक होती है। क्योंकि इन नाट्यों में उप-प्रसंग बहुत जोड़ दिये जाते हैं। एक प्रकार से जो हमारे शास्त्री नाटकों के पूर्व रंग की तरह होते हैं। अक्सर सभी स्थानों के लोकनाट्यों में यह प्रयोग किया जाता है। जैसे गुजरात का भवाई, महाराष्ट्र विदर्भ की खड़ी गम्मत, बंगाल की जात्र या राजस्थान की लोकनाट्य शैली गवरी या लोक नाटक ख्याल इत्यादि। इन सभी में पूर्व रंग के रूप में विश या स्वांग लाने की परंपरा दिखाई देती है। मूल नाटक की प्रस्तुति से पहले नाई का वेश, सेठ का वेश, मालिन का वेश या महाराष्ट्र के लोकनायक खड़ी गम्मत में ग्वालिन का वेश इस तरह की आदिवासी नाट्य शैली गवरी में भी विभिन्न स्वांग वाले पात्र होते हैं।

इस परंपरा का प्रयोग केवल हमारे देश में ही होता है ऐसा भी नहीं है। पश्चिमी देशों यानी यूनान में भी यह प्रथा प्रचलन में चलती है। पश्चिम में इसे करटेनन रेजर के रूप में जानते हैं तो यूनान में कोरस के रूप में जानते हैं। भारतीय नाटकों में जो भूमिका सूत्रधार द्वारा अदा की जाती है वही भूमिका यूनान में कोरस के द्वारा अदा की जाती रही है। भारत में सूत्रधार एक या दो होते हैं तो यूनान में कोरस में पूरा नृतकों और गायकों का समूह होता है। यूनानी नाटकों की एक खासियत यह भी होती है कि उनका दृश्य विभाजन नहीं होता वह लगातार नाट्य व्यवहार में चलता रहता है ऐसा नहीं है कि पूर्व रंग के इस प्रकार का प्रचलन नाटक के शुरुआत में होता हो यूरोप में नाटक की अवधि बढ़ाने के लिए नाटक के अंत में आफ्टर पीसेज जोड़ने की प्रथा रही है।

पूरी दुनिया में प्रथम महायुद्ध के बाद सभी सृजनात्मक और रचनात्मक विधाओं और मानवीय संवेदनाओं में बहुत बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है। १८९० के आसपास के समय को हम प्रयोग धर्मी संक्रमण काल भी कह सकते हैं। इसी दौर में परंपराओं से अलग आधुनिक रंगमंच के नाटक की नीव पड़ी। इसी दौर हमारे प्रयोग धर्मी नाटककार भारतेंदु जी का समय रहा। इसी समय में हिंदी के साहित्यिक रंगमंच की स्थापना की गई। यह दौर व्यावसायिक पारसी रंगमंच के विकास का भी रहा है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने व्यवसायिक रंगमंच के भड़कीले रोमांचक प्रदर्शन की जगह रंगमंच की नई परंपराओं की शुरुआत की। उन्होंने ना केवल प्रदर्शनों के स्तर पर बल्कि नाटक लिखने की भी एक नई परंपरा को आगे बढ़ाया। उन्होंने अकेले ही भाषा साहित्य के माध्यम से समाज और राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान की। सदियों से चली आ रही नाटकों की परंपराओं पूर्व रंग सूत्रधार यम -यमी, नंदी इत्यादि की प्रथाओं को तोड़ा। इसके अलावा उन्होंने नाटकों की भाषा को सहज और अर्थपूर्ण भी बनाया। उन्होंने अपने नाटकों और कविताओं में दो भाषाओं का प्रयोग किया पहले खड़ी बोली और दूसरी ब्रजभाषा। वे बहुत अच्छे कवि और व्यंग्यकार भी थे। इनके पिता गिरधरदास लेखक थे। उन्होंने एक नाटक भी लिखा जिसका शीर्षक था 'नहुष'। शीर्षक से स्पष्ट हो जाता है कि यह अवश्य ही यह नाटक किसी पौराणिक प्रसंग पर आधारित है। भारतेंदु जी ने नाटकों में आम व्यक्ति की त्रासदियों का समावेश किया लिहाजा आम आदमी नाटकों से जुड़ा और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भारतेंदु जी ने आधुनिक नाटक की नींव रखी। आगे चलकर भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग नाटक के विकास के नजरिए से महत्वहीन रहा, इस दौर में कुछ नाटकों के अनुवाद भले ही हुए हो। इसके बाद प्रसाद युग आया। जयशंकर प्रसाद जी ने ऐसे नाटकों का सृजन किया जिन्हें रंगमंच पर प्रदर्शन करना संभव नहीं था। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में सुंदर भाषा शैली का उपयोग किया लेकिन उनके नाटक गंभीर तरीके के थे। उनकी गंभीरता को देखकर उस समय एक सवाल उठता है की नाटक और रंगमंच में कौन श्रेष्ठ है। स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि रंगमंच के प्रयोग उन नाटकों में नहीं के बराबर थे। उनके नाटक ऐतिहासिक और पौराणिक थे। लेकिन प्रसाद जी के बाद उपेंद्रनाथ अश्क ने अपने नाटकों को रंगमंच से जोड़ने का प्रशंसनिक कार्य किया। उन्होंने अपने नाटकों में मध्यवर्गी जीवन की विसंगतियों को दिखाते हुए नाटक को आम आदमी तक पहुंचाने का एक सफल प्रयोग किया। इसके अलावा उन्होंने अनेक एकांकी नाटक भी लिखें जिनका प्रदर्शन सफलतापूर्वक रंगमंच पर किया गया। उनके कुछ नाटकों में वैवाहिक उलझन का यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। लेखिकीय स्तर पर यदि हम प्रयोग धर्मिता के उदाहरण के रूप में देखें तो धर्मवीर भारती जी के काव्य नाटक

'अंधा युग' मिलता है। क्योंकि यहां से नाट्य लेखन को एक नया मोड़ मिलता है अंधा युग ने पहली बार हिंदी नाटक में यह स्थापित किया की काव्य और नाटक का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है और एक श्रेष्ठ नाट्यकृति एक प्रकार से काव्य ही है अर्थात काव्य का एक प्रकार है।

४.४ सारांश

यदि हम यह तलाश करने जाएं की शताब्दियों की लंबी यात्रा के बाद समकालीन हिंदी रंगमंच पर सूत्रधार किस रूप में उपस्थित है या नाटक के पाठ और नाटक के भीतर तथा बाहर उसकी स्थितियों में कैसा परिवर्तन आया तो समकालीन हिंदी रंगमंच पर सूत्रधार को गहरी निराशा हाथ लगेगी। आज वह स्पष्टत: दो भागों में बंट गया है। नाट्य विधा के भीतर उपस्थित न के बराबर है जबकि नाटक के पाठ के बाहर वह हमेशा उपस्थित है। बाह्य पात्र के रूप में उपस्थित इस सूत्रधार को आज हम निर्देशक के रूप में जानते हैं। इस सूत्रधार की शक्ति हमेशा बढ़ती गई। और धीरे-धीरे इसने अभिनेता और दर्शन की शक्ति पर भी अपनी सत्ता काबिज की। भारतीय रंग परंपरा में सूत्रधार को अपने नाम के अनुरूप महत्व प्राप्त है। हमारे समाज में संसार को रंगमंच, जीवन को नाट्य, मनुष्य या जीव को अभिनेता और ईश्वर को सूत्रधार कहा जाता है। यह माना जाता है कि ईश्वर ही वह सूत्रधार है जिसके हाथ में सारे सूत्र हैं। वह एक प्रकार से मनुष्य या जीव रूपी अभिनेता को संसार के रंगमंच पर जीवन के नाट्य में संचालित करता है। सूत्रधार की यही नियामक भूमिका हमारी रंग परंपरा में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

४.५ लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न १. प्रयोग धर्मिता को अंग्रेजी में क्या कहते हैं ?

उत्तर: एक्सपेरिमेंट और एक्सपेरिमेंटालिज्म

प्रश्न २. किस विश्व युद्ध ने नाटकों को नया आयाम दिया?

उत्तर: प्रथम विश्व युद्ध

प्रश्न ३. भारतेंदु के किस नाटक में नाट्य परंपरा की सार्थक खोज हुई?

उत्तर: अंधेर नगरी

प्रश्न ४. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के 'बकरी' नाटक के कथानक का विषय क्या है?

उत्तर: राजनीति

प्रश्न ५. मणि मधुकर के नाटक 'रस गंधर्व' में किस नाट्य शैली का प्रयोग हुआ है?

उत्तर: राजस्थान लोकनाट्य शैली

४.६ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

प्रश्न १. प्रयोग धर्मी नाटक की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न २. प्रयोग धर्मी नाटकों के स्वरूप की चर्चा कीजिए।

प्रश्न ३. विविध नाटककारों के नाटकों में प्रयोग धार्मिता का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

४.७ संदर्भ ग्रंथ

- किसे कहते हैं नाट्यशाला – शंभू मित्र
- भारतीय नाट्य परम्परा और रंगभूमि – डॉ. मदन मोहन भारद्वाज
- बीसवीं शताब्दी का हिंदी नाटक और रंगमंच – गिरीश रस्तोगी

*****

५

'आधे अधूरे' नाटक का नाटक के तत्वों के आधार पर विवेचन - कथानक व पात्र और चरित्र चित्रण

इकाई की रुपरेखा

५.१ इकाई का उद्देश्य

५.२ प्रस्तावना

५.३ लेखक का परिचय

५.४ 'आधे अधूरे' नाटक की कथा वस्तु

५.५ 'आधे अधूरे' नाटक पात्र व चरित्र चित्रण

 ५.५.१ सावित्री का चरित्र चित्रण

 ५.५.२ महेंद्र नाथ का चरित्र चित्रण

 ५.५.३अशोक का चरित्र चित्रण

 ५.५.४ बिन्नी का चरित्र चित्रण

५.६ सारांश

५.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

५.८ लघुत्तरी प्रश्न

५.९ संदर्भ पुस्तकें

५.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई में 'आधे अधूरे' नाटक का नाटक के तत्वों के आधार पर अध्ययन करेंगे। इकाई के माध्यम से हम निम्न मुद्दों का अध्ययन करेंगे –

१. 'आधे अधूरे' नाटक की कथा का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

२. 'आधे अधूरे' नाटक के प्रमुख पात्रों के चरित्र का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

५.२ प्रस्तावना

'आधे अधूरे' नाटक का आधुनिक कालीन नाटक में प्रमुखता से नाम लिया जाता है। क्योंकि इस नाटक को समकालीन जिंदगी का पहला सार्थक नाटक समझा जाता है। जिसमे घोर आधुनिकता से भरी जिन्दगी के असली पहलुओं को उजागर किया गया है। नाटक की कथा और सभी पात्र उनकी मनः स्थिति से जूझ रहे है।अपने जीवन में जो उन्होंने आधुनिकता का चोला पहना है फिर भी उनका नग्न रूप नाटक में दृष्टिगोचर होता दिखाया गया है। क्योंकि आर्थिक विपन्नता भी इस कथा की प्रमुख समस्या है।

५.३ लेखक का परिचय (मोहन राकेश जीवन परिचय)

आधुनिक युग के प्रमुख साहित्यकारों में मोहन राकेश का नाम प्रमुखत: से लिया जाता है। मोहन राकेशजी ने नाटक, उपन्यास कहानी, यात्रा वृतांत, निंबध आदि विविध विधाओं में लेखन कार्य किया है। व कई नये प्रयोग कर साहित्य सृजन से साहित्य को अलग दिशा देने का कार्य किया है।

मोहन राकेश का जन्म ८ जनवरी १९२५ को अमृतसर में हुआ था। इनके पिता श्री करमचंद गुगलानी पेशे से वकील थे। मोहन राकेश ने लाहौर के ओरिएण्टल महाविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। हिंदी व संस्कृत विषय में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्होने भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयो में अध्यापन का कार्य किया इनमे मुंबई, दिल्ली, शिमला, जालन्धर, विश्वविद्यालय प्रमुख है। लेकिन थोड़े ही समय में इन्होने अध्यापन कार्य से मुक्त हो साहित्य सृजन की ओर अपना रुख किया और हिंदी कहानी पत्रिका सारिका का सम्पादन कार्य किया। इस कार्य में भी इनकी रूचि अधिक समय तक न रही। अंत: यह कार्य भी मोहनजी ने छोड़ दिया।इसके बाद मोहनजी का सम्पूर्ण समय स्वतंत्र लेखन कार्य करते बीता।

मोहन राकेश के तीन विवाह हुए इनकी पहली पत्नी का नाम सुशीला था जो अपने पुत्र के साथ देहरादून में रहती थी। उनकी दूसरी शादी पुष्पा नामक महिला से सन १९६० में हुई, जो शीघ्र ही टूट गई। इन्होने १९६३ में अनीता आलेख नाम की महिला के साथ तीसरा विवाह रचाया। शादी के समय अनीता की उम्र २१ वर्ष थी यह दिल्ली की रहने वाली है और आज भी लेखन कार्य से जुडी हुई है ।

साहित्यिक परिचय:

मोहन राकेश आधुनिकता से घिरे हुए साहित्यकार थे। इन्होंने हिंदी नाटक को नई दिशा दी। कथा साहित्य को नए परवरिश से जोड़ा। यही कारण है कि नाटककारों की श्रेणी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद के बाद मोहन राकेश का नाम आता है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों को रंगमंच पर अलग ढंग से प्रदर्शित कर प्रसिद्धि और सफलता हासिल की।

नाटक के साथ अन्य विधा लेखन में यात्रावृतांत और संस्मरण विशिष्ट शैली में लिखे गए है जो पाठक विशेष के जहन में सजीव चित्र खींच देते है।

मोहन राकेश की रचनाएँ:

उपन्यास : अँधेरे बंद कमरे, न आने वाला कल, अंतराल, नीली रौशनी की बाहें।

कहानी संग्रह : क्वार्टर , पहचान, वारिस (कुल ५४ कहानी)

निबंध संग्रह : परिवेश, वकलम खुद

यात्रा विवरण : आखिरी चट्टान तक

जीवनी संकलन : समय सारथी

डायरी : मोहन राकेश की डायरी (संपादन - अनीता राकेश)

नाट्य कृतियाँ : आषाढ़ का एक दिन (संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार – १९६२), लहरों के राजहंस, आधे अधूरे।

एकांकी संकलन : अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी बीज नाटक, दूध और दांत (अप्रकाशित)

अनुदित नाटक : मृच्छ कटिकम, शाकुंतलम (दोनों नाटकों का हिंदी अनुवाद)

मोहन राकेश आधुनिक काल के कुछ विशिष्ट नामों में गिने जाने वाले साहित्यकार है। इन्होंने रंगमंच को दृष्टिगत रखते हुए कृतियाँ लिखी जो नाविन्यता से परिपूर्ण है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी मोहन राकेश भाषा के कुशल ज्ञानी, समग्र शैली में पारंगत और प्रबुद्ध चिंतक थे।

नाटक के तत्वों के आधार पर आधे अधूरे नाटक

नाटक के तत्व :

- कथावस्तु
- पात्र
- उद्देश्य
- भाषा शैली
- देशकाल वातावरण
- सवांद

५.४ 'आधे अधूरे' नाटक की कथा वस्तु

आधे अधूरे नाटक मध्यम वर्गीय अतिअल्प आय से जूझ रहे परिवार की कथा है। इस प्रकार के परिवार को कितनी ज्वलंत समस्याओ से जूझना पड़ता है लेखक मोहन राकेश ने ऐसी अवस्था का चित्रण वास्तविक तौर पर किया है। ऐसे परिवार की अनेक कठिनाईया जैसे परिवार के सदस्यों में असंतोष, उनका दम घुटना, वातावरण में निराशा और कलह आदि बुरे प्रभाव को दर्शाया है। साथ ही घर में कमाती एक अकेली स्त्री और वही पूरे घर का काम काज करती। एक अकेली स्त्री और उसके भरोसे पल रहे उसके निठल्ले पति, बेकार छिछोरे बच्चे जो संस्कार हीन है।लेखक ने परिवार के सभी सदस्यों का चरित्र साकार उभारकर हमारे सामने रख दिया है।

परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से भिन्न है, आपस में लड़ते झगडते है, बड़े छोटे का लिहाज घर के संस्कारो में ही नहीं है ऐसा जान पड़ता है। नाटक की स्त्री जो कमाने के साथ घर का हर एक काम करके इतनी उब गई है कि वह महत्वकांक्षा की सारी हदें पार करते हुए ऑफिस के उच्च पदस्थ पुरुषों के साथ संबंध बनाती है। घर के इस प्रकार के माहौल के कारण वह इस घर से मुक्ति चाहती है लेकिन हताश क्लांत होने के बावजूद भी इसी घर में रहने को विवश है। वहीं घर का पुरुष भी स्त्री से क्लांत और निराश है वह भी घर छोड़ना चाहता है पर कहीं ठौर नहीं पाता और घर ही वापस लौटकर आता है। घर के सभी बच्चे भी परिस्थितिनुसार पोषित हुए है उनका असन्तोष, खीज, कुंठा भी नाटक में दर्शित होती है लेकिन घर की ये यातना सभी भोगने को विवश है इसके अतिरिक्त और कोई चारा उनके पास नहीं है।

नाटक का प्रारंभ काले सुट वाले व्यक्ति से होता है। वह इशारा करता है कि नाटक के शेष पुरुषों की भूमिका में वही बार बार मंच पर आएगा।

नाटक की प्रमुख स्त्री पात्र सावित्री ऑफिस के काम से थकी हारी घर आती है घर की अव्यवस्थित दुर्दशा देखकर परेशान हो जाती है उसके गुस्से का कोई पारावार नहीं रहता। और क्रोधावस्था में उसका सामना पुरुष एक अर्थात उसके पति महेन्द्रनाथ से हो जाता है। जब महेन्द्रनाथ को पता चलता है कि सावित्री का बॉस सिंघानिया घर पर आ रहा है तो इस बात को लेकर दोनों में जंग छिड़ जाती है। नाटक की स्त्री पात्र सावित्री अपनी सफाई देते हुए कहती है कि वह अपने बॉस को घर अशोक (बड़े लड़के) को नौकरी लगवाने के हेतु से बुला रही है। लेकिन यह जानकर भी अशोक और महेन्द्रनाथ इस बात से खिन्न है। घर गृहस्थी चलाती कमाती स्त्री और बिन काम का पति दोनों में यह बाद विवाद इतना बढ़ जाता है कि पिछला सब कच्चा - चिट्ठा खुलता है।

पुरुष एक : हाँ ss, सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरुर।इसीलिए बेचारा यहाँ आता है चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मनाते कि एक इतना बड़ा आदमी,सिर्फ एक बार कहने भर से.......।

पुरुष एक : मै नहीं शुक्र मनाता ? जब जब किसी नये आदमी का आना जाना शुरू होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ।पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था .....।

स्त्री : (स्थिर दृष्टी से उसे देखती)और क्या क्या बात रह गयी है कहने को बाकी ? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरुष एक : क्या ... जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हो गए ?

घर की अवदशा, दीन - हीन अवस्था का जिम्मेदार दोनों एक दूसरे को ठहराते है। पुरुष अन्य पुरुषों के जैसे जगन्नाथ और मनोज का नाम लेकर उसे उलाहना देता है तभी दरवाजे पर बड़ी लड़की बिन्नी आ जाती है। बड़ी लड़की बिन्नी जिसने सावित्री के एक्स प्रेमी मनोज के साथ भागकर शादी की है। वह भी अपने जीवन में असंतुष्ट और बैचेन है। उसी

समय छोटी बेटी किन्नी का घर में प्रवेश होता है वह अपनी स्कूल की जरुरत की चीजों की मांग और शिकायत से खिन्न है।

माँ - बाप के साथ भाई बहन का भी झगड़ा होता है अश्लील किताब पढ़ने को लेकर। इस सबसे परेशान होकर महेंद्रनाथ घर छोड़ने का फैसला करता है और इसी धमकी के साथ घर छोड़कर चल देता है।
अब पुरुष - दो अर्थात सावित्री का बॉस सिंघानिया आता है। अशोक और बिन्नी उसकी अश्लील हरकतों को देख मजाक उड़ाते है। लेकिन इस सब से सावित्री ख़फ़ा हो जाती है। बच्चे मॉ पर भी आरोप करते है कि वह अपनी ख़ुशी के लिए बड़े आदमियों के संपर्क में रहती है यह सब सुन सावित्री आहत हो जाती है और घर छोड़ने का मन बनाती है। यहीं नाटक के पूर्वाद्ध को विराम मिलता है।

उतरार्ध के प्रथम दृश्य में अशोक बिन्नी और किन्नी प्रमुख किरदार बनकर सामने आते है। इन पात्रों जरिये लेखक बताना चाहते है कि घर का हर एक किरदार इस घर की नरकीयता का कारण है।

घर में छोटे बड़े सभी के स्वभाव विद्रोही है। यहाँ छोटी बेटी किन्नी के संवाद इस प्रकार है।

छोटी लड़की : बताओ,चलता है कुछ पता ? स्कूल से आई तो घर पर कोई भी नहीं था। और अब आई हूँ ,तो तुम भी हो,डैडी भी है,बिन्नी दी भी है-पर सब लोग ऐसे चुप है जैसे.......।

स्त्री : तू अपना बता कि आते ही कहाँ चली गई थी?

छोटी लड़की : कहीं भी चली गई थी ।घर पर था कोई जिसके पास बैठती यहाँ ?........दूध गर्म हुआ मेरा ?

स्त्री : अभी हुआ जाता है।

छोटी बेटी किन्नी : अभी हुआ जाता है !स्कूल में भूख लगे तो कोई पैसा नहीं होता पास में। और घर पर आने पर घंटा घंटा दूध ही नहीं होता गरम।

घर की इस परिस्थिती से उबकर सावित्री हमेशा के लिए घर छोड़कर अपने पुराने मित्र जगमोहन के साथ बाहर जाती है। लेकिन हताश हो कुछ समय बाद घर वापस लौटती है। अपनी मनोकामना पूरी न होने की वजह से चिड़कर किन्नी को पीटती है। महेंद्र नाथ का मित्र जुनेजा(पुरुष चार) वहॉ उपस्थित है वो सावित्री से बातचीत करने ही वहॉ आया है। सावित्री बच्चों की उपस्थिति में अपने पति महेन्द्र को अपशब्द बोलती है उसे रीढ़हीन लीज-लीजा और आधा - अधूरा आदमी कहती है। जुनेजा (पुरुष चार) भी सावित्री के पिछले २१ साल के चरित्र का पुरोधान सामने रखते हुए कहता है कि उसने अनेक बार अलग - अलग पुरुषों के साथ भाग जाने का प्रयास किया है लेकिन असफल रही इसलिए अभी तक यहॉ है। जुनेजा यह भी कहता है कि तुम्हारे अधिक पाने की लालसा एक पुरुष से पूरी नहीं हो पायगी। इसलिए तुम्हे सब कुछ अधूरा लगता है और लगता रहेगा। इन बातों के दरम्यांन सावित्री को अहसास होता है सब पुरुष जाति ने मुखोटे अलग अलग लगा रखे है

प्रवृति सबकी एक सरीखी है। सब कि सब आधे अधूरे है। इस प्रकार सावित्री और महेन्द्रनाथ एक दूसरे से अलग होना चाहते है। लेकिन हो नहीं पाते। थक हार कर साथ रहने को विवश है। नाटक के सभी पात्र असभ्य, अशील वातावरण में, स्वभाव को ऐसे बनाये है और बिना किसी बदलाव के जीवन जीने को तैयार है।

इस प्रकार आधे अधूरे नाटक की कथावस्तु संक्षिप्त होते हुए भी रोचक और सुगठित है। यह कहानी विघटित मध्यम वर्गीय परिवार की कहानी है। इस कहानी में एक ऐसा परिवार है जो अनेक वसंगतियों से घिरा हुआ है। पात्रों का आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्तर भी शीर्षक की तरह आधा अधूरा है। नाटक की कथावस्तु को दो भागों मे बांटा गया है। केवल दृश्य को आधार बनाकर नाटक की कथावस्तु लिखी गयी है व्यर्थ के प्रसंग घटनाओ को नाटक में कहीं कोई स्थान नहीं है इसी कारण से कथा सीधी व सरल हो गई अकारण कथा का विस्तार नहीं हुआ है।

५.५ 'आधे अधूरे' नाटक पात्र व चरित्र चित्रण

नाटक का अभिन्न अंग होते है पात्र और उनका चरित्र चित्रण। पात्रों का चरित्र उनके क्रिया कलाप और सवांद के माधयम से ही नाटककार नाटक की कथा को आगे बढ़ता है। तभी वह उस विषय के साथ न्याय कर पाता है और इसी विशिष्टता के आधार से वह दर्शकों तक पहुँचता है।

आधे - अधूरे नाटक शहरी वस्ती में रह रहे निम्न मध्यम परिवार की कहानी लेकर हमारे सामने आता है। परिवार के सभी सदस्यों की असंगति घर में दारिद्रय पूर्ण वातावरण को जन्म देती है। और इस प्रकार के वातावरण को नाटक के पात्र पूरी ईमानदारी के साथ यथार्थ चरित्र प्रस्तुत करते है। आधे अधूरे नाटक में कथा के अनुरूप पात्र चरितार्थ हुए। नाटक में पात्र रचना इस प्रकार हुई है।

१. पुरुष एक
२. पुरुष दो
३. पुरुष तीन
४. पुरुष चार
५. स्त्री पात्र - सावित्री उम्र लगभग चालीस साल
६. बड़ी लड़की - बिन्नी, उम्र बीस साल
७. छोटी लड़की – किन्नी ,उम्र बारह- तेरह साल
८. लड़का - अशोक, उम्र इक्कीस के आस पास

आधे अधूरे बहु चर्चित नाटक है। इस नाटक में सबसे बड़ी विडंबना यह है। कि मध्यमवर्गीय शहरी परिवार पर चित्रित यह नाटक एक परिवार में गुंथा हुआ तो है पर परिवार के सभी सदस्यों के मन में एक दूसरे के प्रति कड़वाहट भरी हुई। वे एक दूसरे से दूर जाना चाहते है।

यहॉ तक कि कोई आपस में किसी का चेहरा तक नहीं देखना चाहता पर साथ में रहने के लिए बाध्य है। क्योकि घर के बाहर भी किसी का कोई स्थायी ठोर ठिकाना नहीं है। और लेखक ने पात्रों को विशिष्ठ नाम न देकर पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष तीन, पुरुष चार, स्त्री, लड़का, बड़ी लड़की, छोटी लड़की, कहकर पात्रों को सम्बोधित किया है। नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण हम इस प्रकार करेंगे।

५.५.१ सावित्री का चरित्र चित्रण:

सावित्री आधे-अधूरे नाटक की प्रमुख और सशक्त पात्र है। उसकी उपस्थिति नाटक में प्रारंभ से अंत तक रहती है। नाटक की प्रमुख नायिका के रूप में सावित्री अन्य सभी पात्रो के चरित्र से सम्बंधित है। सावित्री की उम्र लगभग ४० की है। चहरे पर अभी भी जवानी की चमक और चाह दोनों है। लेखक ने सावित्री को भारतीय नारी के परिवेश में दिखाया है। वह साधारण साड़ी और ब्लाउज पहने है। वहीं नाटक के उत्तरार्ध में विशिष्ट कार्यक्रम के अवसर की साडी पहने हुए दर्शाया गया है।

सावित्री पात्र की निम्न विशेषताएँ इस प्रकार है।

१. घर की सर्वे सर्वा:

आधे अधूरे नाटक की स्त्री पात्र सावित्री नाटक में सबसे अहम् भूमिका में है। परिवार में दोनों प्रकार की भूमिका सावित्री निभा रही है। सावित्री के पति पुरुष एक महेन्द्रनाथ अपने कर्तव्य से विचलित है न कमाते है, न घर का कोई काम करते है। सावित्री रोजी कमाने का जरिया भी है और रोटी पकाने का जरिया भी है। अपने पति और बच्चो का भरण - पोषण सावित्री ही करती है। नाटक के प्रारंभ में ही सावित्री दफ्तर से थकी हारी घर आती है और घर का सामान अस्त व्यस्त देख चिढ़ जाती है। और उसका यह गुस्सा कभी पति पर कभी बच्चों पर निकलता है। उसके जीवन में कई उलझने है कुछ आफिस की और कईयों घर की, बच्चों की। इतनी उलझनों की बीच सावित्री आर्थिक, परिवारिक सभी जिम्मदारी संभाले हुए है। जबाबादरियों को संभालने में वह कामयाब नहीं हो पायी क्योकि घर की व्यवस्था, पति का स्वभाव और बच्चों का गैर वर्तन कहीं न कहीं उस पर लांछन सा लगाता है उसकी असफलता का। लेकिन वह प्रयासरत है कि उसके लडके की नौकरी लग जाए और वह अपनी बेटियों बिन्नी और किन्नी को सब सुख सुविधाऍ मिल सके उनका भविष्य सँवर सके। इस हेतु वह अपने बॉस सिंघानियाँ को घर बुलाती है। घर के लोगों के विरोध के बावजूद। वह घर की आर्थिक दुर्दशा को सँवारना चाहती है। परिवार को सुव्यवस्थित मार्ग पर देखना चाहती है इस कार्य को करने हेतु वह अपने चरित्र का पतन भी कर देती है।

स्त्री: इसलिए कि किसी तरह घर का कुछ बन सके। कि मेरी अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके।अगर मै कुछ ख़ास लोगों के साथ सम्बन्ध बनाकर रखना चाहती हूँ, तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो तो मैं छोड़ दूंगी कोशिश। हाँ इतना कहकर कि मैं अकेले दम पर इस घर की जिम्मेदारियाँ नहीं उठाती रह सकती।

आधुनिक नारी:

सावित्री पात्र नाटक में एक महत्वाकांक्षी नारी के रूप में परिलक्षित होती है। सावित्री का पति महेन्द्रनाथ उसकी महत्वाकांक्षा को पूरा करने में असमर्थ है। वह अपनी इच्छओं को दबाती नहीं या कुढ़न और घुटन भरी जिंदगी जीने के बजाय दूसरे पुरुषों से संबंध बनाकर अपनी इच्छओं की पूर्ति करती है। वह आज की नारी का बोध करती है इसीलिए घर की चौखट में कैद नहीं है पूरे घर की जबाबदारी अपने कंधो पर उठाये है। वह इस घर को छोड़ कर जाने में कतई संकोच नहीं करती लेकिन उसके जीवन में आने वाला प्रत्येक पुरुष किसी न किसी दुर्बलता का शिकार है आधा – अधूरा है। जिन्दगी में आगे के मार्ग बंद हो जाते है तो वह जगमोहन के साथ नये सिरे से जीना चाहती है। लेकिन जगमोहन भी उससे फंद छुडाता है। इस प्रकार न चाहते हुए भी वह फिर अपनी अंधेर भरी जिन्दगी में वापस लौटती है। इतनी त्रासदीयों को सहन करने के बाद छट पटाती हुए उसी नर्क में आकर रहना उसके स्वभाव की सहनशीलता का परिचय है।

नाटक के अंत में जब जुनेजा उसकी वास्तविक जिन्दगी से उसे अवगत कराता है तो वह यथार्थ रुप से परिचित हो जाती है कि चारो पुरुर्षों में से कोई भी उसका पति होता तो भी वह इसी निराशा का सामना कर रही होती।

स्त्री: क्यों क्यों क्यों आप और बात करते जाना चाहते है?अभी आप जाइए और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रख रखिये ।इस घर में आना और रहना सचमुच हित में नहीं है उसके ।और मुझे भी .....मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिलकुल बिलकुल जरुरत नहीं है जो न खुद चलता है न किसी और को चलने देता है।

अतः कहा जा सकता है कि सावित्री भारतीय नारी की परिपाटी से परे है वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु पर पुरुषों से अनैतिक संबंध बनाती है और परिवार की तारणहार, वही है उसी प्रकार परिवार की अवदशा का कारण भी वही है।

भौतिक सुख – सुविधाओं की भोगिनी:

सावित्री जीने वाली और अपनी सुख सुविधाओं की और अधिक ध्यान देने वाली स्त्री है। महेंद्रनाथ से जब सावित्री ने विवाह किया था उस समय वह सफल व्यापारी था। सावित्री की सभी इच्छाएँ – आकांक्षाएँ पूरा करने में सक्षम था लेकिन उसकी न समझी और एय्याशी ने सारे धन को नष्ट कर दिया और वह सावित्री की उन्नत असीम इच्छाओं को पूरा करने में असमर्थ हो गया। अब वही पति उसे आधा अधूरा लगने लगा क्योंकि वह एक आदमी में सब कुछ एक साथ देखना चाहती है - पैसा, वैभव, पद व्यक्तित्व आदि सब। हॉ यह सच है कि पति की इस दुर्दशा से वह हताश नहीं हुई उसने पूरे परिवार की जिम्मेदारी अपने कंधो पर उठा ली। लेकिन उसके ललक भरे स्वभाव और जगमोहन के साथ घर छोड़कर जाने की तैयारी और मुहॅकी खाकर वापस लौटने के बाद पुरुष - चार जुनेजा उससे कहता है - महेन्द्र की जगह कोई भी आदमी होता तो तुम्हारी जिन्दगी में दो - तीन साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली।

नाटक में महेन्द्रनाथ स्पष्ट कहता है - "उनदिनो इस घर का खर्च बहुत अधिक था तथा सावित्री को खुश करने के लिए वह चार सौ रूपए महीनें के किराए पर बड़ी बड़ी कोठीयाँ लेता है, किस्तों पर फ्रीज खरीदता है और आना - जाना भी टैक्सियो? में होता तथा बच्चों को कॉन्वेंट जैसे महँगे स्कूलों में पढ़ाया जाता है।"

अतः इन सभी प्रकार के वर्णन से हम कह सकते है कि सावित्री के जीवन में भावों से अधिक भौतिकता का रुख था।

असंतुष्ट पत्नी:

सावित्री को नाटक में दुःख और त्रासदा से परिपूरित बताया गया है। वह हमेशा दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट रही उसे अपने पति से आर्थिक दृष्टि से कोई सुख नहीं मिला और शारीरिक दृष्टी से भी वह अपने पति का सुख भोग अधिक दिनो तक न ले सकी। पति की इस कंगाली और निठल्लेपन के लिए कहीं न कहीं सावित्री ही जिम्मेदार थी क्योंकि विवाह के समय महेन्द्रनाथ का व्यापार अच्छा खासा चल रहा था लेकिन भौतिक सुखों की ललक, एय्याशी भरा स्वभाव, अति खर्च नें सब कुछ मिटा दिया यहाँ तक कि महेन्द्रनाथ दुर्बल निठल्ला बना दिया। इस सब परिस्थति के लिए सावित्री जबाबदार होकर भी महेन्द्रनाथ को कोसती रही उसे आधा -अधूरा मानकर न उसे प्रेम दे सकी और न ही सहानुभूति यहाँ तक कि उसे अपना पति मानने से इनकार करती है।

इस प्रकार सावित्री अपने दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट थी। एक पत्नी के रूप में, एक मॉ के रूप में, एक प्रेमिका के रूप में भी वह असंतुष्ट थी।

अहंकारी महिला:

सावित्री नाटक की प्रमुख पात्र है वह घर - बाहर दोनो को सम्भालती है।आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व कर रही सावित्री आधुनिक सुख - सुविधाओं के मोह में इतनी भटक चुकी है कि सही रास्ता छोड़ गलत रास्ता उसको अच्छा लगता है। उसने नाटक में जितने पुरुषों के साथ संबंध बनाये हर एक ने शारिरिक हवस को पूर्ण कर उसे भटकता छोड़ दिया।

सावित्री भारतीय आदर्श नारी की व्याख्या के सभी पहलुओं को कतबा देती है पद, रुत्वा, पैसा इसके आगे अपना पतिव्रत धर्म भी भूल जाती है परिवार की घुटना और दिशाहीनता का कारण भी बनती है।

उसके अहंकारी स्वभाव का प्रमुख कारण उसके पति महेन्द्रनाथ का कुछ काम धंधा न करना भी है वह स्वावलम्बी महिला है खुद कमाती है और सभी निर्णय भी खुद ही लेती है फिर वे निर्णय कितने ही गलत क्यों न हो वह स्वयं को महेंन्द्र की पत्नी मानने को तैयार नहीं है। वह अपने पति महेन्द्र के मैले पजामे को इस प्रकार उठाती हो जैसे मारा हुआ जानवर। वह घर के छोटे छोटे कामों के लिए महेन्द्रनाथ को फटकार लगाती है।

उसका हठीला और अहंकारी स्वभाव तब और खुलकर दिखता है जब वह जुनेजा से कहती है - "आप जाइए और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रखिए। इस घर में आना और रहना सचमुच हित में नहीं है। उसके और मेरे भी अपने पास उस मोहरे की

बिल्कुल - बिल्कुल जरुरत नहीं है जो न खुद चलता है और न किसी और को चलने देता है।"

मानसिक त्रासदी की शिकार:

सावित्री के चरित्र का महत्वाकांक्षी होना वासना मोह में खुद को डूबो लेना इसका एक प्रमुख कारण महेन्द्रनाथ का निठल्लापन और दब्बू प्रवृति भी है । उसे पद, पैसा, सम्मान की लालसा है और यह सब घर में नहीं है वह किसी भी कीमत पर सब कुछ पाने की चाह रखती है अच्छे नहीं तो बुरे रास्ते पर ही चलकर क्यों न हो सब कुछ पाना चाहती है। इस प्रक्रिया में कई मानसिक आघात उसे हुए है, परिपूर्णता की कल्पना में वह भटक गई है, अपने पति की असफल जिन्दंगी ने उसे विद्रोही बना दिया है एक पूरे आदमी की तलाश में वह हर एक को परखने लगी लेकिन पूर्णता उसके हाथ नहीं लगी।

सावित्री का पति जीवन के हर पग पर असफल रहा और सावित्री घर की सर्वे - सर्वा थी लेकिन सब कुछ सँभालते हुए भी कुछ न मिल पाने की जद्दोजहद ने उसे गलत रास्ता दिखा दिया।

बड़ी लड़की बिन्नी के शब्दों में महेन्द्रनाथ का राक्षस रुप इस प्रकार उभरकर सामने आता है – आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या क्या होता रहा है यहाँ डैडी चीखते हुए ममा के कपडे तार तार देना, उनके मुँह पर पट्टी बांधकर उन्हें बंद कमरे में पीटना...... खींचते हुए गुसलखाने के कमोट पर ले जाकर..... (सिहरकर) मै तो बयां भी नहीं कर सकती कि कितने कितने भयानक दृश्य देखे है इस घर में मैंने।

इस प्रकार कई मानसिक त्रासदियों से सावित्री ग्रस्त थी। और उसके चरित्र का आवारापन उसका विसंगत व्यवहार के लिए कारणदायी उसका परिवार ही था।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि सावित्री नाटक की प्रमुख पात्र है नाटक की पूरी कहानी उसके इर्द-गिर्द घूमती है वह नाटक की नायिका है जो मध्यमवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जीवन में मिली असंगति और उसका अति महत्वकांक्षी स्वभाव उसे भटकाता है, विवश करता है, आर्थिक उलझने और पति की असफलता उसके स्वाभाव में चिड़चिड़ापन लाती है । परिवार की जबाबदारी के बोझ के तले दबी सावित्री घर छोड़ने के कई नाकामयाब प्रयत्न करती है पर असफल हो इसी आधे अधूरे परिवार और पति के साथ रहने को मजबूर है।

५.५.२ महेंद्रनाथ का चरित्र चित्रण:

'आधे अधूरे' नाटक में महेन्द्रनाथ (पहला पुरुष) सावित्री का पति है। जो विवाह पूर्व अच्छा खासा व्यापार करने वाला और विवाह के कुछ समय पश्चात पत्नी की कमाई पर जी रहा है। एकांत और कुंठित भरा जीवन उसे खूंखार बना देता है। वह अपने दोस्तों के अलावा और किसी से ज्यादा घुल-मिल नहीं पाता। मेहमान या किसी परिचित के आने पर किसी न किसी बहाने से घर से निकल जाता है।

पराश्रित व्यक्तित्व:

जैसे कि हम जानते है महेन्द्रनाथ का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। पत्नी की कमाई पर जीवन गुजर करने वाला महेन्द्रनाथ हर एक काम के लिए दूसरों पर अश्रित है। वह न कोई निर्णय लेने में सक्षम है और न कोई कार्य करने में स्वयं का सामर्थ्य दिखा पाया है। इस सम्बन्ध में नाटक में सावित्री अपना स्पष्ट मत प्रस्तुत करती है :- "जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है... “यह कहना चहिए या नहीं... जुनेजा से पूछ लूँ। यहाँ जाना चाहिए या नहीं... जुनेजा से राय ले लूँ।

कोई छोटी से छोटी चीज खरीदनी है तो भी जुनेजा की पसन्द से। कोई बड़े से बड़ा खतरा उठाना है तो... जुनेजा की सलाह से।

यहाँ तक की मुझसे ब्याह करने का फैसला भी किया उसने जुनेजा की हामी भरने से।" इस प्रकार हम कह सकते है महेन्द्रनाथ कुंठित जीवन जीते है। तीन बच्चों के पिता होते हुए भी न कोई पिता का कर्तव्य निभा पाते और न कोई पति का।

शंकालु स्वभाव:

महेन्द्रनाथ का स्वाभाव नाटक में अपने पत्नी पर शक करना उसके रहन-सहन और क्रिया कलापों को शंकालु दृष्टी से देखना है। जब सिंघानिया के घर पर आने की बात महेन्द्रनाथ को पता चलती है तब भी वह सावित्री की तरफ शक की नजर से देखता है। नाटक में यह झलक इस प्रकार है :-

पुरुष एक : कौन आएगा सिंघानियां!

स्त्री : उसे किसी के यहॉ खाना खाने जाना है इधर। पाँच मिनट के लिए यहाँ भी आएगा। यह आदत अच्छी नहीं लगती तुम्हारी कितनी बार कह चुकी हूँ।

पुरुष एक : तुम्ही ने कहा होगा उससे आने के लिए।

स्त्री : कहना फर्ज नहीं बनता मेरा, आखिर मेरा बॉस है।

महेन्द्रनाथ का शंकालु स्वाभाव उस समय भी इंगित होता है जब बिन्नी मनोज के घर से आती है। वह सावित्री से कहता है कि वह बिन्नी से इस बारे में बात करे कि अपना घर छोड़ कर अचानक क्यों चली आयी।

यदि हम सम्पूर्ण नाटक में महेन्द्रनाथ के शंकालु स्वाभाव की मीमांसा करते हे तो एक ही निष्कर्ष निकलता है कि सावित्री की चरित्रहीनता उसके शंकालु बनने में अधिक सहायक हुई है।

ईर्ष्यालु और कुढ़नशील स्वभाव:

महेन्द्रनाथ खुद तो कोई काम नहीं करता था लेकिन उसे सावित्री के पुरुष मित्रों से हमेशा ईर्ष्या होती थी। वह उन मित्रों के घर आने की खबर सुनकर ही भाग जाता था। उसे ईर्ष्या इस बात से भी है कि सावित्री के सभी पुरुष मित्र उससे अधिक पढ़े लिखे, उच्च पदस्थ

और प्रतिष्ठित है। इस ईर्ष्या का प्रदर्शन वह स्वयं करता है :- "अधिकार, रुतबा, इज्जत, यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बिगड़ता आया है और आगे भी बिगड़ ही बिगड़ सकता है।" नाटक में महेन्द्रनाथ का कुंठा से त्रसित व्यक्तित्व दिखाई देता है। घर का मुखिया होने के बावजूद भी वह घर में स्वयं को तुच्छ समझता है। उसके पत्नी बच्चे भी उसे यह अहसास दिलाने से चूकते नहीं है। हमेशा महेन्द्रनाथ को नीचा दिखाने, अपमानित करते रहते है। पत्नी की उपेक्षा ने उसे बोना बना दिया है उसमे प्रतिरोध करने की शक्ति भी नहीं है। यह कुढ़न इस प्रकार नाटक में व्यक्त हुई है।

पुरुष एक : यह सब कहता है वह और क्या क्या कहता है ?

स्त्री : वह इस वक्त तुमसे बात नहीं कर रही।

पुरुष एक : पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री : तुम्हारा घर है।

पुरुष एक : तो मेरा घर नहीं है यह ? कह दो नहीं है।

स्त्री : सचमुच तुम अपना घर समझते हो इसे तो।

इस प्रकार नाटक में कई जगहों पर महेन्द्रनाथ का ईर्ष्यालु स्वाभाव और कुढ़नशीलता को हम देख सकते है लेकिन यह परिस्थिति उसने स्वयं तैयार की थी वह खुद जबाबदार था।

नाटक में सर्वाधिक प्रभावहीन:

महेन्द्रनाथ पराश्रित व्यक्ति के रूप में उभरा है उसका आराम पसंद स्वभाव उसके दब्बूपन प्रवृत्ति को जन्म देता है। और यही कारण है कि घर का वरिष्ठ होते हुए भी वह प्रभावहीन है। उस वरिष्ठ के सन्मान से वंचित है। बड़ी लड़की बिन्नी घर से भागकर शादी कर लेती है, छोटी लड़की उद्दण्ड हो गई और अशोक २१ की उम्र में भी कोई जबाबदारी नहीं स्वीकारना चाहता है परिवार का इस प्रकार विघटित होने का कारण उसका मुखिया महेन्द्रनाथ ही है। उसे कोई सन्मान नहीं, न उससे कोई डरता है क्योंकि उससे भी कभी कोई कर्तव्य परायणता हो नहीं पायी न कभी बच्चों की ओर ध्यान दिया न घर ओर न पत्नी की ओर। दिनभर आराम से घर पर बैठकर चाय पीना, अख़बार पढ़ना, घर का सामान अस्त व्यस्त कर छोड़ देना आदि आदते महेन्द्रनाथ को घेरे है। वह स्वयं अपना आत्मपरीक्षण करते हुए कहता है : "मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ जिसके अन्दर ही अन्दर घर को खा लिया है।"

अतः स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ अपेक्षापूर्ण जीवन व्यतीत करते है। उसकी आलस्य प्रवृति, आराम तालाब स्वभाव उसे खुद की नजरों में गिराए है। घर का मुखिया होते हुए भी वह घर – पत्नी - बच्चों को संभालने में असमर्थ रहा। उसकी कामचोरी ने सावित्री को कमाने पर मजबूर किया जब सावित्री की इच्छा पूर्ति नहीं हो पायी तब उसने परपुरुषों के साथ संबंध बनाये। और परिवार अधिक विघटन की गर्त में चला गया इस प्रकार मोहन राकेश ने नाटक के माध्यम से मध्यमवर्गीय परिवार के मुखिया का चित्रण किया है जो कर्तव्य हीन, बेगार, लाचार, आरामतलब स्वभाव उसे आधा अधूरा बना देता है।

५.५.३अशोक का चरित्र चित्रण:

आधे अधूरे नाटक में अशोक एक सहायक पात्र के रूप में प्रदर्शित हुआ है। उसमे आधुनिक युग के युवा पीढ़ी के गुण नजर आते है। उसका दर्द -आक्रोश भरा स्वभाव पलायनवादिता का प्रस्तुतीकरण सामान्य रूप से हुआ है।

लेखक ने नाटक में अशोक की वेश भूषा, रंग-रूप को भी इसी नजरिये से दर्शाया है। नाटक में अशोक आधुनिक युग का युवा है उसने भड़कीले रंग के शर्ट - पेंट पहने है, फ्रेंच कट दाढ़ी रखी है। उम्र २१ के आस - पास है। घर की आर्थिक परिस्थिति से आगाह है फिर भी कोई काम नहीं करता, दिन भर घर पर पत्रिकाओं का वाचन और अश्लिल चित्र काटने में रूचि रखता है। वर्णा नामक लड़की के पीछे घूमना भी उसका एक काम है। अपने पिता की तरह ही बेकार, कोई भी काम वह स्थिरता से नहीं कर सकता न पढ़ाई लिखाई मन लगाकर की और न नौकरी। अशोक के व्यक्तित्व के आधार पर उसके चरित्र की निम्न विशेषताएँ इस प्रकार है।

स्पष्टवादी:

आधे- अधूरे नाटक में अशोक ही ऐसा पात्र है जो स्पष्ट बोलता है भले ही बात कड़वी हो या शर्मनाक हो अशोक किसी से नहीं डरता। जब सावित्री सिंघानिया को घर बुलाती है तो अशोक सिंघानिया से मिलने के पश्चात उसका मजाक उड़ाता है उसके विषय में अपमान जनक वाक्य बोलता है। वह जानता है सावित्री को यह सब सुनकर अच्छा नहीं लगेगा फिर भी उसका वाकपटु स्वभाव उसे बोलने से नहीं रोक पाता। नाटक का एक दृश्य इस प्रकार है।

सावित्री (स्त्री) : दोनों बार इसी के लिए बुलाया था मैंने उसे आज भी इसी की खातिर---------------------।

अशोक (लड़का) : मेरी खातिर मुझे लेना देना है उससे

बड़ी (लड़की) : ममा उसके जरिए नौकरी की कोशिश कर रही होगी न --------।

अशोक (लड़का) : मुझे नहीं चाहिए नौकरी। कम से कम उस आदमी के जरिए हरगिज नहीं। इस बहस के आगे अशोक बिन्नी और सावित्री की एक नहीं सुनता और सिंघानिया के विषय में बेवाक होकर कहता है "पाँच हजार तनखाह है, पूरा दफ्तर संभालता है पर इतना होश नहीं कि अपनी पतलून के बटन"

अशोक का वाकपटु स्वाभाव उसकी माँ की गलत बातों व क्रिया कलापो पर बोलने से भी नहीं झिझकता वह सिंघानिया जैसे कपटी लोगों से नफरत करता है, वह सावित्री से कहता है " नहीं बर्दाश्त है तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगो को घर कि जिनके आगे, हम जितने छोटे है, उससे और छोटे हो जाते है अपनी नजर में। ------ आगे अशोक कहता है "जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं उसकी तनखाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।"

नाटक में इस प्रकार के सवांदो से अशोक का स्पष्टवादी स्वभाव झलकता है।

आवारपन और चरित्रहीनता:

नाटक में अशोक अपने पिता की तरह बेकार है उसका काम है दिन भर लड़कियों के पीछे आवारगी करना, अश्लील किताबे पढ़ना और अभिनेत्रियों के अश्लील चित्र जमा करना। एक वर्णा नाम की लड़की के पीछे पड़ा है और घर की कई वस्तुएँ उसे भेट कर चुका है।

वह अपनी माँ की बिलकुल इज्जत नहीं करता और उसके चरित्र से एसा जान पड़ता है कि वह पिता की तरह जीवन में असफल रास्ते पर अडिग खड़ा है।

विद्रोही स्वाभाव:

नाटक में अशोक का चरित्र माता के चरित्रहीनता और पिता की महत्वहीनता से प्रवृत होता है। ऐसे माता पिता के पालन- पोषण ने उसे विद्रोही प्रवृति का बना दिया है और इस विद्रोही स्वभाव के कारण उसमें अशिष्टता भी आ गई है। वह उसके माँ के पुरुष मित्र घर आने का भी विद्रोह करता है और कहता है :- "उसके किसी बड़ी चीज की वजह से। एक को कि वह इंटेलेक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसके तनखाह पाँच हजार है, तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं - उसकी तनखाह को, नाम को रुतबे को बुलाया है।"

नाटक में ऐसे अनेक प्रसंग आये है जिनसे अशोक के विद्रोही स्वाभाव का पता चलता है।

फैशन की दौड़ में अंधा:

अशोक आधुनिक विचारधारा से इतना अधिक जुड़ा हुआ है कि वह पाश्चात्य संस्कृति का अनुसरण करता है वह अपने बड़ो की इज्जत नहीं करता है। नाटककार ने उसकी वेश - भूषा को भी फैशनेबल ही दिखाया है। भड़कीले कलर के शर्ट पेंट पहने दुबला पतला युवक जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है जब उसकी बहन पूछती है कि शेव क्यों नहीं की तो वह बोलता है कि वह अब फ्रेंच कट रखने का विचार कर रहा है। और उसे पत्र - पत्रिका पढ़ने का शोक है। पत्रिकाओं में नई फैशन को देख अनुसरण करने में अशोक लगा रहता है।

बेरोजगार:

अशोक दायित्व हीन युवक है ऐसा नहीं है कि उसे कोई रोजगार नहीं मिल रहा है। सच यह है कि वह नौकरी या और कोई काम करना ही नहीं चाहता। एयरफ्रीज में मिली नौकरी भी वह आलस्य प्रवृति के कारण छोड़ देता है। न वह खुद के भविष्य के विषय में चिंता करता है न घर - परिवार के सदस्यों की उसे कोई चिंता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि अशोक आधुनिक युग का नवयुवक है। घर की परिस्थिति ने उसे बिगाड़ दिया है न वह कोई जबाबदारी समझता है न परिवार को। उसमे विद्रोह है, आलस है, तनाव और पलायन है उसकी हँसी में भी व्यंग्य है। पिता का अनादर और माँ के प्रति वितृष्णा उसमे कूट कूट कर भरी हुई है। जीवन के यथार्थ से कोसों दूर वह आवारापन, अष्लील चित्रों को इकठ्ठा करना, योन विषयक किताबे पढ़ना और वर्णा नाम की लडकी के साथ रोमांस उसकी दिनचर्या है।

५.५.४ बिन्नी का चरित्र चित्रण:

बिन्नी अर्थात बड़ी लड़की नाटक में सहायक पात्र के रूप में मौजूद है। बिन्नी की उम्र लगभग २० वर्ष की है। वह सावित्री और महेन्द्रनाथ की बड़ी बेटी है। बिन्नी के स्वभाव में कभी बहुत अधिक समझदारी झलकती है तो कभी बहुत नादानी। बिन्नी ने अपने मॉ के दोस्त मनोज से घर से भागकर शादी की है। लेकिन वह अब इस शादी से खुश नहीं है। उसके जीवन में एक बिखराव है जो किसी को नजर नहीं आता। नाटक में बिन्नी की भूमिका हर एक पात्र की हकीकत दिखाने की अधिक रही है।अर्थात नाटक में परिवार और पात्रों के व्यक्तित्व और स्वभाव को चरितार्थ बिन्नी द्वारा किया गया है। इन्ही सभी विशेषताओं के बीच बिन्नी के चरित्र की विशेषता इस प्रकार उभरकर सामने आयी है।

घर के वातावरण से प्रेरित:

'आधे अधूरे' नाटक में महेन्द्रनाथ और सवित्री घर परिवार को संभाल न सके उन्होंने अपना, घर परिवार का और बच्चों का जीवन भी विचलित कर दिया। असंस्कारी परिवार में बिन्नी का स्वभाव भी इसी तरह फला-फूला है। वह अपनी मॉ के मित्र मनोज जिसका हमेशा उनके घर आना जाना होता है उसके आकर्षण की शिकार होती है और उसके साथ घर से भाग जाती है। लेकिन मनोज के साथ आजीवन बद्धता उसे मुश्किल लगती है। क्योंकि वह जिस परिवार में रही है वहॉ उसकी मां भी अपने पिता की आजीवन सहचरी न हो सकी। बिन्नी ने नाटक में अपने जीवन के निराश लम्हो की झलक इस प्रकार प्रदर्शित की है।

स्त्री : यहाँ बैठ सच सच बता तुझे वहाँ किस चीज की शिकायत है?

बडी लड़की : शिकायत किस चीज की नहीं ....।

स्त्री : तो

बड़ी लड़की : और हर चीज की है।

स्त्री : फिर भी कोई खास बात !

बड़ी लड़की : कि मैं इस घर से ही अपने अन्दर कुछ ऐसी चीज लेकर गयी हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वभाविक नहीं रहने देती।

इस प्रकार बिन्नी अपने पालन-पोषण और घर के वातावरण को अपनी आगे के जीवन के दु:ख का कारण मानती है।

स्वभाव में आवारापन:

बिन्नी का स्वभाव भी अपनी माँ की तरह महत्वाकांक्षी है। अधिक सुख और ऐश आराम की चाह में वह अपनी माँ के दोस्त के साथ घर से भाग जाती है। लेकिन फिर भी वह उस बंधी हुई जिन्दगी से खुश नहीं है क्योकि उसने खुलकर अपनी मर्जी से जीवन जीया है। इसीलिए वह विवाह के बाद निराश और हताश है।

"घर के कुण्ठित और विषैले वातावरण से मुक्ति के लिए वह मनोज के साथ भाग जाती है, किन्तु अपने नये जीवन को स्वभाविक नहीं बना पाती। यही बिन्नी का आवारापन है और इसी आवारापन के कारण अपने नये घर में दम घोटू वातावरण अपरिचय, अजनबीपन से हताश एवं निराश है।"

द्वन्द्व में उलझा हुआ व्यक्तित्व:

आधे - अधूरे नाटक में बिन्नी एक मात्र ऐसी पात्र है जो अलग अलग रूपों में नजर आती है। पहले तो अपनी अल्हड़ता का परिचय मनोज के साथ भागकर देती है। वहीं दूसरी ओर अशोक और किन्नी को हिदायत देते वक्त प्रौढ़ और समझदारी का परिचय देती है। जुनेजा को जब वह अपने पिता के विषय में बताती है तो माँ के प्रति उसका लगाव दिखता है हर परिस्थिति का जायजा लेती बिन्नी खुद के जीवन को भी संवार नहीं पाती कुंठा से ग्रसित स्वर में माँ से कहती है।

"एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मै इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे बाहर निकल लूँ। ----- क्योंकि मुझे लगता है कि ---- कैसे बताऊँ क्या लगता है ? वह (मनोज) जितने विश्वास के साथ यह बात करता है ,उससे मुझे अपने से एक अजब सी चिढ़ होने लगती है। मन कहता है - मन करता है कि आसपास की हर चीज को तोड़ -फोड़ डालूँ।" इस प्रकार बिन्नी मनोज से सच्चा प्यार करके भी अजनबी सा महसूस करती है। इस प्रकार बिन्नी हर समय, हर परिस्थिति से जूझती है सबको अच्छे राह पर चलने की सलाह देती है पर खुद हताश है।

जीवन में बिखराव:

परिवार की चल-विचलता, विघटन ने बिन्नी के जीवन को अस्थिरता से घेर लिया है। सम्पूर्ण नाटक में अपने जीवन के दुःख, परेशानी को भुलाकर भी वह अपनी माँ - पिता और भाई -बहनो को उबारने में लगी है। दाम्पत्य जीवन में आई नीरसता से वह पीडित है।

संवेदनशील:

बिन्नी अपने दाम्पत्य जीवन से जूझ रही है। तनाव ग्रस्त है लेकिन अपने परिवार माता - पिता, भाई - बहन से उसका प्यार पूरे नाटक में झलकता है। वह खुद के तनाव को भूलकर सभी को समझाती है। माँ से कहती है जो करना है वो सब तुम्हीं कर सकती हो इस घर में और कोई नहीं। अशोक और किन्नी को भी समझाती है कि उनके उम्र के लिहाज से रहे। पिता के प्रति भी वह सहानुभूति रखती है कि वह अपने वैवाहिक जीवन की परेशानियों से कोई निजात नहीं पा सकती है।

अतः हम कह सकते है कि बिन्नी अच्छे और बुरे दोनों गुणों से परिपूरित है जवानी की अल्हड़ता, आवारगी वहीं परिवार की बड़ी लड़की होने के नाते सभी को समझाना और संभालना भी उसका स्वभाव है। और नाटक में उसके इसी प्रवृति की उजागरता अधिक दिखाई गयी है।

इस प्रकार आधे - अधूरे नाटक में पात्रों की रचना कथा, परिस्थति और विषय संचयन के हिसाब से की गई है। पात्रों की न तो अधिकता है और न ही कमतरता है। कथावस्तु को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक पात्र महत्वपूर्ण है। हर एक पात्र अपने किरदार को अच्छी तरह निभाता है। पात्रों की उम्र की उनकी वेश-भूषा, परिवेश का अध्ययन करे तो आधे - अधूरे नाटक को विशिष्ट बनाने में पात्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

५.६ सारांश

उक्त इकाई में हमने 'आधे अधूरे' नाटक का कथानक और पात्र व चरित्र चित्रण का अध्ययन किया है। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी नाटक के कथानक को विस्तार से जान सकेंगे साथ ही नाटक के सभी पात्रो व उनके चरित्र का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगे।

५.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. 'आधे अधूरे' नाटक के कथानक को विस्तार से लिखिए।

२. 'आधे अधूरे' नाटक के माध्यम से लेखक ने किन समस्याओं की ओर हमारा ध्यान इंगित किया है वर्णन कीजिए।

३. नाटक की प्रमुख स्त्री पात्र कौन है ?उसके चरित्र की विशेषताओं को विश्लेषित कीजिए।

४. नाटक में पुरुष एक पात्र के चरित्र की विशेषताओं को विस्तार से लिखिए।

५. 'आधे अधूरे' नाटक में बिन्नी के चरित्र की विशेषताओं को विश्लेषित कीजिए।

६. 'आधे अधूरे' नाटक में अशोक नामक पात्र आधुनिक युग के आवारा युवक का बोध कराता है।अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।

५.८ लघुत्तरी प्रश्न

१. आधे अधूरे नाटक के लेखक कौन है ?

उत्तर: मोहन राकेश

२. आधे अधूरे नाटक के लेखक मोहन राकेश द्वारा लिखित अन्य दो नाटको के नाम लिखिए।

उत्तर: आषाढ़ का एक दिन ,लहरों के राजहंस

३. नाटक में प्रमुख स्त्री पात्र कौन है ?

उत्तर: सावित्री

३. सावित्री की छोटी बेटी का नाम क्या है ?

उत्तर: किन्नी

५. आधे अधूरे नाटक में पुरुष दो कौन है ?

उत्तर: सावित्री का बोस सिंघानिया

६. आधे अधूरे नाटक में जुनेजा कौन है ?

उत्तर: पुरुष एक महेन्द्रनाथ का मित्र

७. आधे अधूरे नाटक में बिन्नी किसके साथ शादी करती है ?

उत्तर: अपनी मां के दोस्त मनोज के साथ।

५.९ संदर्भ पुस्तकें

१. आधे-अधूरे - मोहन राकेश

२. आधे-अधुरे : समीक्षा - प्रो. राजेश शर्मा

३. नाट्य समीक्षा - डॉ. दशरथ ओझा

४. नाटक की साहित्यिक संरचना- गोविंद चालक

*****

६

‘आधे अधूरे’ नाटक का नाटक के तत्वों के आधार पर विवेचन - नाटक का उद्देश्य, भाषा शैली,देशकाल और वातावरण संवाद योजना

इकाई की रुपरेखा

६.१ इकाई का उद्देश्य

६.२ प्रस्तावना

६.३ नाटक का उद्देश्य

६.४ भाषा शैली

६.५ देशकाल और वातावरण

६.६ संवाद योजना

६.७ सारांश

६.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.९ लघुत्तरी प्रश्न

६.१० संदर्भ पुस्तकें

६.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई में ‘आधे अधूरे’ नाटक का नाटक के तत्वों के आधार पर अध्ययन करेंगे। इकाई के माध्यम हम निम्न मुद्दों का अध्ययन करेंगे –

- ‘आधे अधूरे’ नाटक के उद्देश्य का विस्तार से अध्ययन करेंगे।
- ‘आधे अधूरे’ नाटक की भाषा शैली अध्ययन करेंगे।
- ‘आधे अधूरे’ नाटक का देशकाल और वातावरण को जानेंगे।
- ‘आधे अधूरे’ नाटक की संवाद योजना को विस्तार से जानेंगे।

६.२ प्रस्तावना

‘आधे अधूरे’ नाटक एक आधुनिक जीवन का गहन अध्ययन करता है और इस अध्ययन शीलता में लेखक सब कुछ इतना सदा हुआ प्रस्तुत करता है कि नाटक को पढ़ने या देखने के पश्चात् पाठक या श्रोता इसके हर एक पहलू से शीघ्र ही अवगत हो जाते है ।नाटक की भाषा के अंर्तगत शब्दों का चयन, उनका क्रम और संयोजन नाटक को उत्कृष्ट बना देता है। वही पात्रों का चरित्र और संवाद नाटक के उद्देश्य और वातावरण को सुगठित करते है।

६.३ नाटक का उद्देश्य

आधे - अधूरे नाटक आधुनिक युग की आधुनिक शैली में लिखा गया नाटक है। जो विशेष रूप से महानगरीय परिवार की कहानी कहता है। मोहन राकेश जी नई पीढ़ी के रचनाकार है अनेक आलोचनात्मक साहित्य अध्ययन की प्रगाढ़ता इस नाटक में दिखती है मनोविश्लेषण वाद , व्यक्तिवाद और अस्तित्ववाद का प्रभाव और यथार्थ चित्रण नाटक में हुआ है।

आधे - अधूरे नाटक आधुनिक समाज में जी रहे लोगों की दोहरी जीवन शैली को चित्रित करता है जो घर में कुछ और, और बाहर से कुछ और है। इनके जीवन की भौतिकता को ही अपने जीवन की अधिकता बना लेते है। ऐसी जीवन शैली यथार्थ से अधिक कल्पनाओं के सहारे जीती है। और यह कल्पना जीवन में पारिवारिक और आध्यात्मिक शांति को नष्ट कर देती है। जो जीवन के मूल अर्थ को छोड़ थोथी मानसिकता के लिए इतना भटकती है कि कहीं विश्राम नहीं पाती क्योंकि ऐसी मानसिकता का बोध आधा अधूरा होता है। यह नाटक भी ऐसे ही मध्यमवर्गीय परिवार का नाटक है जो आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विडम्बनाओं से जूझ रहा है उनका यह संघर्ष उन्हें गर्त में ले जा रहा है उनके जीवन का प्रेम, अपनापन इच्छाएं समूल नष्ट कर रहा है। इन्ही मनोवेगों के बीच जूझते परिवार की कहानी आधे अधूरे नाटक है।

आधे अधूरे नाटक की खास बात यह है कि इस नाटक के सभी पात्र अपने न स्वयं के साथ प्रामाणिक है और न ही अपने परिजनों के साथ लेकिन उनकी विडम्बना है कि वह स्वयं आधे अधूरे होते हुए सामने वाले व्यक्ति को परिपूर्ण देखना चाहते है। और इसी परिपूर्णता की चाह में नाटक का अंत हो जाता है। परिवार में प्रमुख व्यक्ति महेन्द्रनाथ का निठल्लापन, सावित्री का नौकरी कर घर की जिम्मेदारी उठाना लेकिन धन, ऐश्वर्य की आस में खुद को भटका लेना और दूसरे मर्दो के साथ सम्बन्ध बनाने में भी उसे किसी तरह की झिझक नहीं होती। इन दोनों पति-पत्नी के बर्ताव से बच्चें भी अपने लिए सही मार्ग नहीं चुन पाते। बेटा अशोक अपने माँ के पुरुष मित्र, अपनी गंदी आदतों के बीच घिरा हुआ है। बड़ी लड़की बिन्नी घर के इस वातावरण से छुटकारा पाने के लिए अपने माँ के दोस्त मनोज के साथ घर से भाग जाती है लेकिन ऐसे वातावरण में पली - बढ़ी बिन्नी इन पीड़ाओं से मुक्त होने की बजाय और उलझ जाती है। छोटी बेटी किन्नी जो सिर्फ १३ साल की है लेकिन उम्र से कहीं ज्यादा ऐसी बातें वह जानती है जो उसे नहीं जानना चाहिए था।

लेखक के अनुसार अधिकांश मध्यमवर्गियों की कथा यही हैं। जहाँ घर के स्त्री पुरुष में सामजंस्य नहीं है उस असमतोलता से उत्पन्न यथार्थ बिखरा हुआ होता है।

आधे अधूरे नाटक में लेखक सिर्फ एक स्त्री के सुख और काम भोग की अपेक्षा को ही नहीं दर्शाते है बल्कि इस नाटक के माध्यम से हमारा ध्यान युवा पीढ़ी के कार्य कलापों की ओर भी इंगित करते है। अशोक और बिन्नी इस बात का दुजोरा देते है। अशोक २१ साल का होते हुए भी रोजगार की ओर से मन विमुख किये हुए है। एक लड़की वर्णा उसके पीछे दिन भर आवारा की तरह घूमता है। गंदे अश्लील फोटो को कटिंग करके रखता है इससे उसकी कामुक प्रवृति भी दिखती है वहीं बिन्नी घर के असंतोष भरे वातावरण से मुक्ति पाना चाहती है वह अपनी अल्हड़ उम्र में अपनी माँ के दोस्त के साथ भाग जाती है लेकिन वह असंतोष

उसका पीछा नहीं छोड़ता। नाटक ने पुरुष जाति का अधिक विश्लेषण नाटक में किया है चार पुरुषों के माध्यम से पुरुष एक महेंद्रनाथ जो बेगार, निठल्ला और बेजबाबदार है आज उसके इस स्वाभाव की वजह से पूरा घर बिखर गया है संस्कारहीन हो गया है। पुरुष दो, तीन, चार सावित्री से अनैतिक सबंध बनाते है। हर एक अपनी एक विशिष्टता के साथ एक कुप्रवृति भी लिए हुऐ है। पूरेपन की तलाश में सावित्री इन चारों के साथ संबंध बनाती है लेकिन फिर भी खुद को अधूरा ही पाती है। पुरुष चार अर्थात जुनेजा सावित्री की हरकतों और स्वाभाव से परीचित है। वह सावित्री से कहता है :

पुरुष चार "असल बात इतनी ही कि महेंद्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में भी ऐसे ही कोई महेंद्र, कोई जुनेजा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ औढ़कर जीना। वह उतना कुछ, कभी तुम्हे किसी एक जगह न मिल पाता इसलिए जिस किसी के साथ भी जिंदगी शुरू करती तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहती।"

इस प्रकार एसी जीवन शैली और इतना असमंजस्य और कटुता भरा परिवार सभी की ज़िंदगीयों को तबाही की ओर ले जाता है।

कुल मिलकर नाटककार के आधे अधूरे नाटक के उद्देश्य की हम चर्चा करें तो नाटक आधुनिक युग की जीवन शैली, फैशन के दौर में रहन-सहन वेश-भूषा का अधिक खर्च और आमदनी आधी और इच्छाएँ अपरिसिमित आदि अनेक कारण व उससे उत्पन्न तनाव और परिवार का विघटन, नैतिक मूल्यों ह्रास, प्रेम विवाह और नासमझी में किये गए विवाह के दुष्परिणाम क्या होते है ? एक घर में एक व्यक्ति का सही रास्ते से भटक जाना कैसे पूरे परिवार के सदस्यों को भटका देता है। कम उम्र में बच्चों की ओर ध्यान न देने से वह कैसे बन जाते है यह अशोक, बिन्नी और किन्नी के माध्यम से लेखक समाज को सीख देते है कि नैतिकता, संस्कृति और संस्कार एक परिवार और एक समाज के लिए कितने आवश्यक है।

६.४ भाषा शैली

किसी भी साहित्य कृति को सुगम आकर्षक और व्यक्त भाषा करती है। क्योंकि भाषा सिर्फ शब्द रचना तक ही सिमित नहीं है। भाषा के माध्यम से भाव और विचारो को भी प्रसारित किया जाता है।

नाटककार मोहन राकेश यथार्थ चित्रण को अधिक व्यक्त करते थे और अपनी एसी प्रयोगवृति के कारण उनके नाटक अधिक प्रचलित हुए। 'आधे अधूरे' नाटक की भाषा पर यदि हम विश्लेषण करें तो नाटककार ने यहाँ अत्यंत, सरल, सुबोध, सुगम भाषा का प्रयोग किया है, जैसे कि हम प्रतिदिन जो आम बोल चाल में प्रयोग करते है। समय परिस्थिति को देखते हुए अंग्रेजी शब्द अनायास ही वाक्य में आ गए है।

आधे अधूरे नाटक का यहाँ हम भाषा के आधार पर अध्ययन कर रहे है जो निम्न तथ्यों के आधार पर कर सकते है :

१. सरल व सुगम भाषा

२. भाव और विचारों से युक्त भाषा

३. पात्रों के अनुरूप

४. व्यंग्य शैली का प्रयोग

५. आवश्यकतानुसार अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग

६. शब्दों में स्पष्ट बयानी और यथार्थवाद

१. सरल, सुगम भाषा:

यह नाटक एक परिवार को लिए चलता है। और परिवार में जो आम बोल चाल की भाषा का प्रयोग किया जाता है। वही सामान्य, सरल, सुगम भाषा ही इस नाटक की भाषा है। यही कारण है कि भाषा में दुरूहता और क्लिष्टता का प्रयोग कही नहीं हुआ । इसीलिए नाटक की भाषा सरल और स्वाभाविक लगती हे :-

बड़ी लड़की : बैठिये अंकल

पुरुष चार : नहीं, मैं अभी चला जाऊँगा

स्त्री : (उसकी तरफ आती) आपको कुछ बात करनी थी मुझसे..... बताया था इसने।

पुरुष चार : हाँ.... इस वक्त तुम ठीक मूड में नहीं हो......।

स्त्री : मैं बिलकुल ठीक मूड में हूँ। बताइये आप ।

बड़ी लड़की : अंकल कह रहे थे, डेडी की तबियत फिर ठीक नहीं है।

स्त्री : घर से जाकर तबीयत ठीक कब रहती है उनकी ? हर बार का यही एक किस्सा नहीं है ?

इस प्रकार साधारण बोल चाल की भाषा का रोचकता से प्रयोग कर लेखक ने संवेदनात्मक अभिव्यक्त को आसान बना दिया है।

२. भाव और विचारों से युक्त भाषा:

आधे अधूरे नाटक की भाषा भाव और विचारशील भाषा है जिसमें प्रवाह है। प्रसंगो के आधार पर भाषा में लचीपालन दिया गया है। जहाँ गंभीरता है वहाँ शब्द भी गंभीर है गुस्से के समय भाषा आक्रोशमयी है एक उदहारण इस प्रकार है।

स्त्री :

(आवेश में उसकी तरफ मुड़ती) मत कहिये मुझे महेंद्र की पत्नी। महेंद्र भी एक आदमी है, जिसका अपना घर-बार है, यह बात महेंद्र को अपना कहने वालों को शुरू से ही रास नहीं आयी। महेंद्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नजर में आपका ही कुछ आप से छीन लिया।

अगला उदहारण :

पुरुष एक : किसे सुना सकता हूँ ? कोई है जो सुन सकता है ? जिन्हे सुनना चाहिए वे सब तो एक रबड़ स्टॉम्प के सिवा कुछ समझते ही नहीं मुझे। सिर्फ जरुरत पढ़ने पर इस स्टैम्प का ठप्पा लगाकर ----?

स्त्री : यह बहुत ही बड़ी बात नहीं कह रहे तुम ?

लड़का : (उसे रोकने की कोशिश में) ममा. .... ।

स्त्री : मुझे सिर्फ इतना पूछ लेने दे इनसे कि रबड़ स्टेम्प के माने क्या होते है ? एक अधिकार, एक रुतबा, एक इज्जत यही न ?

इस प्रकार नाटक की भाषा में प्रसंग की अनुकूलता का पूरा ध्यान रखा गया है। कुछ प्रसंग हल्के - फुल्के है वहाँ आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग सकुशलता से हुआ है।

पात्रों के अनुरूप भाषा:

'आधे अधूरे' नाटक में भाषा का प्रवाह पात्रों की मनस्थिति के अनुसार है। कई नाटकों में दुरूह और कठीन शब्दों के बहुत बड़े वाक्य होते है लेकिन 'आधे अधूरे' नाटक में भाषा पात्रो के और उनके चरित्र के अनुसार प्रयोग की गई है। जैसे अशोक की भाषा शैली उसके चरित्र को दर्शाती है कि वह भी पिता की तरह निकम्मा बेगार है।

लड़का : (मुझे क्या कोई आना वाला है तो ? की मुद्रा में) कौन आने वाला है?

बड़ी लड़की : ममा का बॉस .... क्या नाम है? उसका

लड़का : अच्छा वह आदमी

बड़ी लड़की : तू मिला है उससे ?

लड़का : दो बार

बड़ी लड़की : कहाँ

लड़का : यहाँ इसी घर में

स्त्री : दोनों बार इसी के लिए बुलाया था मैंने उसे, आज भी इसी की खातिर - - - -

लड़का : मेरी खातिर मेरा क्या लेना देना उससे।"

इस प्रकार छोटी वाक्य रचना जो जरुरत के हिसाब से बनाई गयी है साथ ही आम बोल चाल की भाषा है जो पात्र के भावो को भी चरितार्थ करती है।

नाटक में पुरुष दो के द्वारा बोले गए वाक्यों की भाषा भी इतनी सटीक है कि उससे समझ में आ जाता है कि पुरुष दो कितनी नीच प्रवृति का इन्सान है जो एक नहीं कई औरतों के साथ अनैतिक संबंध बनाये हुए है एक उदाहरण देखिए

स्त्री : यह मेरी बड़ी लड़की बिन्नी। अशोक तो आपसे मिल ही चूका है।

पुरुष दो : अच्छा अच्छा यही है वह लड़की। तुम चर्चा कर रही थी इसकी। इसका ऑपरेशन हुआ था न पिछले साल ?........ न न न ना। वह तो मिसेज मथुर की लड़की का हुआ था। (आँखे सिकोड़े) मिसेज माथुर की लड़की का।

इस प्रकार मोहन राकेश जी की भाषा विषयी पारंगतता हमें पात्रों के हाव-भाव, उनका रहन – सहन, उनके चरित्र की विशेषता को प्रदर्शित करती है।

व्यंग्य शैली का प्रयोग:

आधे अधूरे नाटक का परिवेश और पात्र एक प्रकार की असंगति और घुटन से जूझ रहे है। सभी अपनी अलग मनस्थिति को लेकर चल रहे है और स्वयं को योग्य मान रहे हे। परिवार का यह बिखराव स्पष्ट दिखता है हर एक सदस्य की कटुता भरा स्वाभाव बात करते समय व्यंग्यात्मक शैली की भरमार करता है , क्योंकि आपसी प्रेम भाव तो उनमें है ही नहीं, हाँ कटाक्ष कैसे व्यक्त किया जा सके इस नाटक में प्रयुक्त व्यंग्यशैली के सवांद उत्तम है।

स्त्री : यु तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता फिरता बात करता है, वह आदमी ही होता है - पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरुरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा एक शख्सियत हो।

इस प्रकार नाटक में यथार्थ अभिव्यक्ति देने के लिए व्यंगात्मक भाषा को अपनाया है एक दूसरा उदहारण इस प्रकार है :-

पुरुष एक : मैं नहीं शुक्र मनाता ? जब जब किसी नए आदमी का आना - जाना शुरू होता है यहाँ , मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था, फिर मनोज आने लगा था।

आवश्यकता नुसार अन्य भाषा के शब्द एव मुहावरों का प्रयोग:

आधुनिकता भारतीय साहित्य किसी एक भाषायी संच में बंधा हुआ नहीं है हिंदी के साथ उर्दू और अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होना सामान्य है आधे अधूरे नाटक में हिंदी के साथ उर्दू, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग तो हुआ ही है प्रसंगानुकूल संस्कृत शब्द भी तत्सम रूप में दिखते है। जो की बहुत कम मात्रा में है।

सिंघानिया : "आप क्या सोचते है आजकल युवा लोगो में इतनी अराजकता क्यों है ?"

'अंतराष्ट्रीय सम्पर्क है न कम्पनी के तो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते है। जापान से तो एक पूरा प्रतिनिधि मंडल ही आया हुआ था पिछले दिनों। अभी उस दिन में जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिंकी देख रहा था।'

इस प्रकार यहाँ युवा, अराजकता, प्रतिनिधि मंडल, औद्योगिक सांख्यिंकी आदि तत्सम शब्दावली है।

तद्भव शब्द:

आधे अधूरे नाटक में अधिक मात्रा में जिस शब्दावली का प्रयोग हुआ है वह है तद्भव शब्दावली। नाटक के सवांदो में स्वाभाविकता लाने के लिए तद्भव शब्दावली से उपयुक्त कोई और शब्द नहीं हो सकते है। नाटक में तद्भव शब्दावली के शब्द है। घर आँखे, होंठ, बुढा, माँ, साड़ी, रात, सीख, आदि।

देशज शब्द:

तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ भाव सम्प्रेषण की सुविधा के लिए देशज शब्दावली का प्रयोग भी बहुत मात्रा में हुआ है जैसे :- खीजना, किट-किट, तिल - मिलाना, लोंदा आदि

उर्दू शब्दावली:

आधुनिक साहित्य उर्दू शब्दावली के बिना अधूरा है आधे- अधूरे नाटक में प्रत्येक सवांद , प्रत्येक पंक्ति में कोई न कोई उर्दू शब्द का प्रयोग हुआ हे. क्योंकि सामान्यजन मानस में बोली जाने वाली भाषा कोई भी एक भाषानिष्ठ नहीं रह गई है। उर्दू भाषा शब्दावली सहज ही हिंदी के साथ घुल मिल गई है इसी कारण नाटक में सहज-सरल भाषा सम्प्रेषण हेतु उर्दू का प्रयोग हुआ है। उर्दू के कुछ प्रायोगिक शब्द इस प्रकार है : बर्दाश्त, वजह, शऊर, सिर्फ, अख़बार, शिकायत, शादी, सवाल, जबाव, आदि।

अंग्रेजी शब्दावली:

आधे अधूरे नाटक शहरी और मध्यमवर्गीय जीवन शैली को प्रस्तुत करता है। जो शिक्षित वर्ग है और उनके सवांदो में अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग सहजता से दिखाया गया है। जैसे - कबर्ड, प्रेस, फ्रीज, मीटिंग, बोर्ड, पर्स, डैडी, ट्रांसफर, क्लास, फाउन्टर्स, आदि।

इस प्रकार नाटक की भाषा शैली और शब्द रचना सरल दैनिक जीवन में उपयोग में लायी जाने वाली सामान्य जनमानस की बोलचाल की भाषा लगती है वहीं भाषा को व्यंजकता देने के लिए मुहावरों का प्रयोग भी रोकेशजी ने किया है जैसे :- नाक में नकेल डालना, उल्लू बनाना, मिट्टी के लोंदे, रबड़,स्टैंप का ठप्पा, जिंदगी को चौपट करना मारा मारा फिरना आदि।

यथार्थ वादी शैली:

नाटक में आधुनिक युग की सच्चाई को जिस तरीके से नाटककार ने प्रस्तुत किया है वह चित्रण और नाटक की भाषा यथार्थ शैली से व्यवह्त है। नाटक में वर्णित आधुनिक शैली के

परिवार की वास्तविकता, उनके व्यवहार में आपसी रंजिश, घुटन, सभी सदस्यों में आंतरिक संघर्ष को जिस वास्तविकता के साथ व्यक्त किया है वह काबिले तारीफ है।

लड़का : तुम्हारा बॉस न होता, तो उस दिन मैंने कान से पकड़कर घर से निकाल दिया होता। सोफे पर टांग पसारे आप सोच कुछ रहे है, जांघ खुजलाते देख किसी तरफ रहे है और बात मुझसे कर रहे है (नकल उतारता) 'अच्छा यह बतलाइए कि आपके राजनितिक विचार क्या है? राजनितिक विचार है मेरी खुजली और उसकी मरहम। इस प्रकार 'आधे अधूरे' नाटक की भाषाशैली आधुनिक समाज की जन - प्रचलित भाषा जान पड़ती है। जो यथार्थ शैली को प्रस्तुत करने के साथ मुहावरों के माध्यम से भाषा को ओर अधिक व्यंजक बनाती है। नाटककार ने - जिन समस्याओं को वर्णित करना चाहा उसे सशक्त भाषा के माध्यम से प्रभावी बनाया है और पाठकों ,दर्शकों तक उन समस्याओं को पहुँचाने में कामयाब रहे है।

६.५ देशकाल और वातावरण

'आधे अधूरे' नाटक में महानगरीय संत्रास एवं पारिवारिक तनाव का चित्रण बखूबी हुआ है। इस नाटक में देशकाल व वातावरण स्वभाविक यथार्थपरक, सुंदर, और कलात्मकपूर्ण है। इस विषय का विचार करते हुए हम वातावरण को दो प्रकार से देख सकते है पहला आन्तरिक रूप और दूसरा बाह्य वातावरण। 'आधे अधूरे' नाटक में महानगर में जीने वाले एक मध्यमवर्गीय परिवार के तनाव और विघटन का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसलिए वातावरण के दोनों रूपों का कलात्मक चित्रण नाटक में दिखायी देता है। 'आधे अधूरे' नाटक में आंतरिक वातावरण की दृष्टि लेखक अनेक रूपों में करते है। कहीं घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण किया है तो कहीं पात्रों की मानसिकता भावभंगिमा का उत्खनन किया है। कहीं पात्रों के वार्तालाप के मध्य उनकी विवशता को उद्घाटित करता है। इन्ही घटना और परिस्थिति द्वारा नाटककार इस पृष्ठभूमि का वातावरण तैयार करता है। क्योंकि इससे नाटकीय परिस्थितियाँ स्वभाविक बनती है।

मोहन राकेश ने 'आधे अधूरे' नाटक में काले सूट वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम प्रस्तुत करके नाटक में घटनेवाली घटनाओं और परिस्थितियों की और ध्यान केंद्रित करवाया है। क्योंकि काले सूट वाले व्यक्ति के भाष्य से वातावरण का पूर्ण भास हो जाता है। कि नाटक में एक महानगरीय परिवार और उसकी तनाव की स्थिति को ही अंकित किया गया है। वहीं मध्यवर्गीय मानसिकता को लेकर प्रत्येक चरित्र अपनी भूमिका निभाता है। लेखक नाटक में जिन घटनाओं और परिस्थितियों को प्रस्तुत करता है। वे हमारे यथार्थ जीवन से संबन्धित है।

काले सूट वाल व्यक्ति : मैं नहीं जानता आप क्या समझ, रहे है, मैं कौन हुं, और क्या आशा कर रहे है, मैं क्या कहने जा रहा हूँ। आप शायद सोचते हों कि मैं इस नाटक में कोई एक निश्चित इकाई हूँ - अभिनेता, प्रस्तुत कर्ता, व्यवस्थापक, या कुछ और। परंतु में अपने संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता उसी तरह जैसे इस नाटक के संबंध में नहीं कह सकता। क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी तरह ही अनिश्चित है।

"------------------------------ शायद अपने बारे मे इतना कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पे चढ़ते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते है, वह आदमी मैं हूँ आप सिर्फ घूर कर मुझे देख लेते है - इसके अलावा मुझसे कोई मतलब नहीं रखते।"

लेखक ने नाटक में वर्तमान युग के वातावरण को स्पष्ट रूप से लिखा है। 'आधे अधूरे' नाटक मे पात्रानुकूल चित्रण है। स्वयं पात्र की परिस्थिति द्वारा वातावरण को युक्त करने में सहायता प्रदान करते है।

नाटक मे बिन्नी द्वारा यह स्पष्ट करने पर कि वह अपने परिवार के वातवरण के साथ ही उसके घर में आयी है। वह पूछती है कि वो क्या है जो इस घर मे है ? बिन्नी के इस प्रश्न की सच्चाई से सावित्री और महेन्द्रनाथ की स्थिति कीं कर्तव्य विमूढ़ सी हो जाती है क्योंकि वे दोनो जानते है कि वह चीज इस घर में आवारगी ही है लेकिन इस कटु सत्य को वे दोनो कैसे कहे। और उनका मौन ही इस वातावरण का पूर्णत : नग्न रूप प्रस्तुत कर देता है। बिन्नी उत्तर चाहते हुए भी पा नहीं पाती। यह परिस्थिति परिवार के लोगों की संबंधहीनता तथा पात्रों की विशेष मन:स्थिति स्पष्ट करते हुए अनुकूल वातावरण का चित्रण किया गया है।

आंतरिक वातावरण की दृष्टी से इस प्रकार का चित्रण 'आधे अधूरे' नाटक में सर्वाधिक सशक्त ढंग से किया गया है। इस चित्रण के द्वारा पात्रों की संपूर्ण मानसिक स्थिति और तर्जन्य वातावरण की और बोध किया गया है। 'आधे अधूरे' नाटक में व्यक्ति स्वयं आधा अधूरा होते हुए भी दूसरे के अधूरे पन को नहीं सह पाता है। और इस अधूरेपन की तलाश में भटकते हुए अपनी और दूसरों की जिंदगी नरक बना देता है। मध्यमवर्गीय आधुनिक परिवार का प्रतिबिंब इस नाटक के माध्यम से देखा जा सकता है। जहॉ तक परिवार की बाह्य स्थिति प्रस्तुत करने में पात्रों की बाह्य परीस्थितियों को अभिवव्यक्ति दी गई है। 'आधे अधूरे' नाटक में बाह्य वातावरण का निम्न लिखित तीनो रूपों में अत्यंत सशक्त और सुंदर निदर्शन हुआ है। जिसे हम इस प्रकार देख सकते है। आधुनिक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की विसंगति पूर्ण जीवन शैली, युग के सामाजिक विडंम्बना पूर्ण परिवेश तथा पात्रों की वेशभूषा आवारापन का यथार्थ चित्रण किया गया है। नाटक में चूंकि एक मध्यमवर्गीय परिवार की कथा है। इसलिए कथा के अनुरूप उसमे शहरी जीवन को उजागर करने वाला बाह्य वातावरण भी उसी ढंग का प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. विजय वापट के अनुसार:

"आधे अधूरे बेहद चर्चा वाला नाटक है जिसमें आधुनिक जीवन का साक्षात्कार प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक मे विघटित होते हुए आज के मध्यमवर्गीय शहरी परिवार का कड़वाहट भरा चित्रण किया गया है। जिसकी विडम्बना यह है कि व्यक्ति स्वयं अधूरा होते हुए भी औरो का अधूरापन नहीं सहना चाहता। काल्पनिक पुरेपन की तलाश में भटककर अपनी और दूसरों की जिंदगी नरक बना देता है। और जहॉ तक परिवार के बाह्य रूप प्रस्तुत करने का पक्ष है उसके संदर्भ में उस कमरे को देखा जा सकता है जिसमे सारी पुरानी नयी वस्तुएँ अव्यवस्थित रुप में बिखरी पड़ी हो। इस प्रकार निम्न वित्तीय आय वाले परिवार की सामाजिक परीस्थिति ऐसी हो सकती है और वो किस प्रकार के आर्थिक दबावों से जकड़ा हुआ है स्वभावत : इसका चित्रण भी नाटक में हुआ है महेन्द्रनाथ के परिवार के सदस्यों की सामाजिकता उनकी आवारगी ,चरित्र हीनता ,आर्थिक विपन्नता आदि

परीस्थितियों की स्पष्टता का चित्रण पात्रों द्वारा होता है स्त्री अर्थात सावित्री का चालीस की उम्र में भी चेहरे पर चमक और लालसा, बिन्नी का बीस की उम्र में ही अधिक समझदार हो जाना, अशोक का विद्रोह आदि सभी पात्रों में अनुशासनहीनता ,नगरीय सामजिक आर्थिक विषमता से जूझ रहे व्यक्तियों के प्रारूप को देखा जा सकता है।

पुरुष एक निठल्ली और आराम परस्त इंसान है इसलिए उसे साधारण कमीज और पतलून में दिखाया गया है ।कहानी का पात्र अशोक आज का नौजवान युवक है और आवारा, बेरोजगार है उसका पहनावा भडकीले रंग की शर्ट और घिस घिस कर पुरानी हो चुकी पेंट यह पहनावा घर की आर्थिक विपन्नता की और भी हमारा ध्यान इंगित करता है ।कहानी की प्रमुख स्त्री पात्र सावित्री लालसा से युक्त महिला है उसकी साडी घर की परिस्थिति से कहीं अधिक बेहतर है ।नाटक में सावित्री की बेटी बिन्नी साधारण साड़ी पहने हुए है ।और छोटी बेटी किन्नी चुस्त फ्रॉक और फटे मौजे पहने है ।पुरुष दो पतलून और टी-शर्ट पहने हुए है,पुरुष तीन अर्थात जुनेजा पतलून और लम्बी काठ वाला कोट पहने हुए है ।इस प्रकार नाटक में वेशभूषा और वस्त्र सज्जा के माध्यम से वातावरण को सहेजा है जो पूरी तरह न्याय संगत है ।अतः हम इस विवेचन के द्वारा कह सकते है कि मोहन राकेश ने इस नाटक में देशकाल व वातावरण का सफल चित्रण हुआ है।

६.६ संवाद योजना

किसी भी नाटक का सशक्त होना उसके संवाद पर निर्भर होता है ।अन्य साहित्यिक विधा की अपेक्षा नाटक संवाद को लेकर अधिक प्रतिबद्ध होता है। क्योंकि भावों को व्यक्त करने का माध्यम शब्द है और संजोय हुए शब्दों द्वारा सुंदर सरस संवाद बनते है ।नाटक के संवाद ही नाटक के विषय उसके उद्देश्य और महत्व को निश्चित करते है।

आधे अधूरे नाटक के संवाद विषयानुकुल,परिस्तिथिनुसार एवं सरस है ।नाटक की प्रसिद्धि में संवादों की गति और शक्ति कथा को प्रबल बनाती है। कथा की मांग के अनुसार कहीं कहीं संवाद लम्बे हो गए है। कहीं बहुत छोटे। लेकिन यह संवाद नाटक को दुरूह नहीं बना पाये बल्कि नाटकीय समस्या को मुखर करने में सहायक हुए है। आधे अधूरे नाटक में प्रस्तुत संवाद के गुणों और विशेषताओं को हम निम्न माध्यम से जान सकते है –

स्वभाविक और सरलता:

नाटक के संवाद सरल और स्वभाविक है जिनके माध्यम से ही नाटक पाठको को बॉधे रखता है। आधे अधूरे नाटक में संवादो के सहज और सरल होने का यह गुण सर्वत्र मिलता है। संवादो में सरलता और स्वभाविकता से पूरे नाटक में सरसता,चुस्ती और तरोताजापन दिखाई देता है। बिन्नी, सावित्री और पुरुष एक के बीच संवाद में स्वभाविकता और सरलता दिखती है : -

बड़ी लड़की : ममा कहॉ है ?

पुरुष एक : उधर होगी रसोई घर में।

बड़ी लड़की : (पुकारकर) ममा

स्त्री : क्या हाल है तेरे ?

बड़ी लड़की : ठीक है।

स्त्री : चाय लेगी ?

बड़ी लड़की : अभी नहीं। पहले हाथ - मूँह धो लूँ गुसलखाने में जाकर। सारा जिस्म इस तरह चिपचिपा रहा हे कि बस ----।

पात्रानुकूल संवाद:

'आधे अधूरे' नाटक के संवाद पात्रानुकूल है। नाटक का प्रत्येक पात्र अपने चरित्र के अनुसार झलकता है। सावित्री के संवाद छिछोरे प्रकृति के है। वहीं पुरुष एक के संवाद बेगार और निठल्लेपण को प्रदर्शित करते है।

इस प्रकार नाटक में संवादो की रचना पात्र के चरित्र और रहन - सहन को देखते हुए की गई है। इस संबंध में अशोक और स्त्री का एक संवाद है।

लड़का : चुकन्दर है। वह आदमी है ? जिसे बैठने का शऊर है न बात करने का।

स्त्री : पॉच हजार तन्ख्वाह है उसकी। पूरा दफ्तर संभालता है

अशोक : पर इतना होश नहीं कि अपनी पतलून के बटन -----।

स्त्री : अशोक।

प्रसंगानुकूल संवाद:

'आधे अधूरे' नाटक में संवाद प्रसंग के अनुरूप संजोये गये है यही कारण है कि एक भी दृश्य नाटक में ऐसा नहीं है जहॉ संवाद में दुरूहता प्रदर्शित हो। बड़ी लड़की और पुरष चार का संवाद यहॉ अपेक्षित है :

बड़ी लड़की : आप जाकर डैडी को यह बात बता देंगे ?

पुरष चार : कौनसी

बड़ी लड़की : यही ----- जगमोहन अंकल आने की।

पुरष चार : क्यों ? ----- नहीं बतानी चाहिए?

बड़ी लड़की : ऐसा है कि ------।

पुरष चार : मैं न भी बताऊँ शायद पर कुछ फर्क नहीं पड़ने का उससे। ----- बैठ तू।

व्यंग्यात्मक संवाद:

'आधे अधूरे' नाटक में प्रत्येक पात्र किसी न किसी समस्या से जूझ रहा है। सबके अन्दर एक एक द्वंद चल रहा है। हर एक पात्र दुसरे से पृथक है। इसी कारण व्यंग्यात्मक संवादो का

प्रयोग बड़ी ही कुशलता से किया गया है। नाटक में व्यंग्य कथन से कथा में गति आती है और संवादो को गंभीरता मिलती है। नाटक में पुरुष एक और स्त्री के बीच संवाद इस प्रकार है : -

पुरुष एक : तो लोगों को भी पता है , वह आता है यहाँ ?

स्त्री : (एक तीखी नजर उस पर डालकर) क्यों, बुरी बात है ?

पुरुष एक : मैने कहा है , बुरी बात है ? मैं तो बल्कि कहता हूँ, अच्छी बात है।

स्त्री : तुम जो कहते हो , उसका सब मतलब समझ में आता है मेरी।

विश्लेषणात्मक संवाद:

आधे अधूरे नाटक में स्त्री पुरुष के बीच मानों मतभेद संवादो में मनोविश्लेषण के भाव को प्रदर्शित करता है एसे संवादों से नाटक की महत्ता बढ़ती है। 'आधे अधूरे' नाटक के अंतिम संवाद सावित्री और जुनेजा के बीच संवाद मनोविश्लेषणात्मक है । जुनेजा इन संवादों में सावत्री और महेन्द्रनाथ के बीच मतभेद दूर करने की कोशिश करता है।

पुरुष चार : फिर भी तुम्हे लगता रहा है कि तुम चुनाव कर सकती हो । लेकिन दायें से हटाकर बायें, सामने से हटाकर पीछे, इस कोने से हटाकर उस कोने में.... क्या सचमुच कहीं कोई चुनाव नजर आया है तुम्हे , बोलो आया है नजर कहीं।

स्त्री : जरूर जरूर। इस तरह उसका तो उपकार करेंगे ही आप, मेरा भी इससे बड़ा उपकार जिन्दगी में नहीं कर सकेंगे।

पुरुष चार : तो अब चल रहा है। मैं तुमसे जितनी बात कर सकता था कर चूका हुँ। और बात उसी से जाकर करूँगा। मुझे पता है कितना ,मुश्किल होगा यह.... फिर भी यह बात मैं उसके दिमाग में बिठाकर रहूँगा इस बार कि....।

यथार्थवादी संवाद:

आधे अधूरे नाटक आधुनिक युग की यथार्थ परिस्थिति को प्रस्तुत करता है। जो विघटन पारिवारिक परिस्थिति का यथार्थ चित्र हमारे सामने रखता है नाटक की प्रसिद्धि का सशक्त कारण भी यही है। विषय की तरह संवाद में भी यथार्थ रूप देने को अधिक महत्व दिया गया है। नाटक में कई प्रसंग ऐसे है जो संवाद के जरिये यथार्थ दृष्टिकोण की और उन्मुख होते है बड़ी लड़की बिन्नी और स्त्री के संवाद बड़े ही मार्मिक और यथार्थवादी लगते है : -

स्त्री : यहॉ बैठ। सच सच बता. तुझे वहॉ किसी चीज की शिकायत है ?

बड़ी लड़की : शिकायत किस चीज की नहीं.....

स्त्री : तो ?

बड़ी लड़की : और हर चीज की है ....।

स्त्री : क्या

बड़ी लड़की : कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गयी हूँ। जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वभाविक नहीं रहने देती।

इस प्रकार आधे अधूरे के संवाद नाटकीयता कथावस्तु के विकास, चरित्रों को परिपूर्ण समझने, उनकी क्षमता को प्रदर्शित करने में सहायक सिद्ध हुई है। आधे-अधूरे नाटक में प्रयुक्त विशिष्ट संवाद कौशल का प्रभाव संपूर्ण नाटक पर सकरात्मक रूप में हम देख सकते है।

६.७ सारांश

उक्त इकाई में हमने 'आधे-अधूरे' नाटक का उद्देश्य, नाटक की भाषा, संवाद योजना,देशकाल और वातावरण का अध्ययन किया है। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी इन सभी मुद्दों को विस्तार से जान सकेंगे और इन मुद्दों के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी इस नाटक के सभी पहलुओं से अवगत होंगे

६.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. 'आधे-अधूरे' नाटक का उद्देश्य लिखिए।

२. 'आधे-अधूरे' नाटक की भाषा आम बोल चाल की भाषा है।यही कारण है कि नाटक को प्रेक्षकों की वाह वाही मिली।उदाहरण सहित समझाइए।

३. 'आधे अधूरे' नाटक की संवाद योजना का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

४. 'आधे-अधूरे' नाटक में देशकाल व वातावरण की मीमांसा कीजिए।

६.९ लघुत्तरी प्रश्न

१. लेखक अशोक,बीन्नी और किन्नी के माध्यम से समाज को क्या सीख देते है ?

उत्तर: लेखक समाज को सीख देना चाहते है कि नैतिकता,संस्कृति और संस्कार परिवार और समाज के लिए कितने आवश्यक है।

२. पुरुष चार नाटक के अंत में सावित्री से क्या कहता है ?

उत्तर: पुरुष चार कहता है कि "असल बात इतनी ही है कि महेंद्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तो साल दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी करली।"

३. नाटक में प्रयुक्त अँग्रेजी भाषा के कोई पाँच शब्द लिखिए।

उत्तर: कबर्ड,प्रेस,बोर्ड,फ्रीज,मीटिंग,ट्रांसफर,क्लास आदि

४. नाटक में प्रयुक्त उर्दू भाषा के कोई पाँच शब्द लिखिए।

उत्तर: बर्दास्त,शिकायत,शऊर,सवाल-जबाब,शादी,अखबार।

५. 'तुम्हारा बॉस न होता तो उस दिन मैंने कान से पकड़ कर घर से निकाल दिया होता'। 'आधे – अधूरे' नाटक में उक्त वाक्य किसने किससे कहा है ?

उत्तर: अशोक ने सवित्री से कहा है।

६.१० संदर्भ पुस्तकें

१. आधे-अधूरे - मोहन राकेश

२. आधे-अधुरे : समीक्षा - प्रो. राजेश शर्मा

३. नाट्य समीक्षा - डॉ. दशरथ ओझा

४. नाटक की साहित्यिक संरचना- गोविंद चालक

*****

७

‘आधे - अधूरे’ नाटक : विविध संदर्भ

इकाई की रुपरेखा

७.१ इकाई का उद्देश्य

७.२ प्रस्तावना

७.३ आधे - अधूरे : विविध संदर्भ

७.३.१ ‘आधे - अधूरे’ में आधुनिकता

७.३.२ ‘आधे - अधूरे’ में युग बोध

७.३.३ ‘आधे-अधूरे’ नाटक का परिवेश

७.४ सारांश

७.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

७.६ संदर्भ ग्रंथ

७.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- ‘आधे-अधूरे’ नाटक में मोहन राकेश ने आधुनिकता को किस तरह से दर्शाया है, उसकी जानकारी मिल जाएगी।
- नाटक में युग-बोध की चर्चा और मोहन राकेश द्वारा किए गए प्रयोग से परिचित हो सकेंगे।
- इस नाटक में चित्रित परिवेश को जान सकेंगे।

७.२ प्रस्तावना

नाटककार मोहन राकेश द्वारा लिखित प्रसिद्ध नाटक ‘आधे-अधूरे’ का प्रकाशन सन १९६९ में हुआ था। यह ‘आधे-अधूरे’ नाटक सर्वाधिक प्रसिद्ध, चर्चित, मंचित और रंग-चेतना से संपन्न नाटक हैं। साथ ही साहित्य में ‘आधे-अधूरे’ नाटक ‘मील का पत्थर’ बनकर रहा है। यह नाटक पाठकों और दर्शकों में अत्यंत लोकप्रिय हुआ और उसका बार-बार मंचन हुआ है। परंतु बदलते परिवेश के अनुसार ‘आधे-अधूरे’ नाटक में मध्यमवर्गीय शहरी परिवार को दर्शाया है। पुरुष और स्त्री दोनों के संबंध एक परिवार को चलाने के लिए कितने महत्वपूर्ण है, उसी के साथ जीवनयापन करते हुए एक-दूसरे पर विश्वास रखने की जरुरत होती है। पर यहाँ ‘आधे-अधूरे’ नाटक में मोहन राकेश ने शीर्षक को सार्थ ठहराने के लिए जिस तरह कि

रचना की हैं, वह पुरुष और स्त्री की मानसिकता को दर्शाती है। इस नाटक में चित्रित हर पात्र घुटन से भरा होने के बावजूद भी एक साथ रहने के लिए बाध्य है। इसलिए इसे आधुनिक युग में मध्यवर्ग के परिवार की अभाव और तनाव से भरी आधी-अधूरी जिंदगी की कहानी भी कह सकते है।

७.३ आधे - अधूरे : विविध संदर्भ

'आधे-अधूरे' नाटक में १. 'आधे-अधूरे' में आधुनिकता, २. 'आधे-अधूरे' में युग-बोध, ३. 'आधे-अधूरे' नाटक का परिवेश आदि विविध संदर्भ देख सकते हैं –

७.३.१ 'आधे - अधूरे' में आधुनिकता :

नाटककार मोहन राकेश ने अपने 'आधे-अधूरे' नाटक में आधुनिकतावादी जीवन का जिक्र किया हैं। यहाँ नाटक में एक ऐसी जीवन - दृष्टि है जिसके केन्द्र में हमें वर्तमान काल दिखाई देता है। आधुनिक युग की पूँजीवादी प्रणाली में आधुनिकता बदलते अर्थ सम्बन्धों से उपजी नई दृष्टि है। औद्योगिक वैज्ञानिक प्रगति के सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ कुछ नए भ्रष्ट मूल्य भी आधुनिकता का जामा पहनकर समाज में मान्य हो रहे हैं। इन्हीं मूल्यों से सामाजिक एवं वैयक्तिक सम्बन्धों में बिखराव उत्पन्न होता है। नाटक में एकाकीपन को भी दर्शाया गया है, उसी के साथ-साथ आत्मपीड़ा, अस्तित्व का संकट, निराशा, अन्तर्विरोध और मूल्यहीनता आदि के मूल में आधुनिकता का नकारात्मक पहलू दिखाई देता है। अबाध स्वतन्त्रता को नितान्त स्वातन्त्र्य वस्तु मानकर उसे निरपेक्षता की सीमा तक खींच ले जाने में पहले व्यक्ति सामाजिक सन्दर्भों को प्रस्तुत करता है और अन्त में अपने व्यक्तित्व के बिखराव, घुटन, टूटन एवं कुण्ठित होने का कारण बनता है। नाटककार की अनुभूति में बौद्धिकता की प्रधानता है तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता, औद्योगीकरण, नगरीकरण, कुण्ठा, तनाव, विद्रोह, अजनबीपन, अमानवीयता, घोर नैराश्य, क्रूरता, विसंगति, अनिश्चय आदि आधुनिक भाव बोधों से युक्त है। इसीलिए कहीं-ना-कहीं मोहन राकेश के नाटकों पर प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद और यथार्थवाद का प्रभाव दिखाई देता है।

'आधे-अधूरे' नाटक का सम्पूर्ण परिवेश आधुनिक है। और मोहन राकेश इन सभी आधुनिक संकटों से गुजरे हैं और आधुनिकता को सृजनात्मक अभिव्यक्ति दी है। इस नाटक में मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन की गाथा और स्त्री-पुरुष संघर्ष, तनाव का चित्रण चरम सीमा तक हुआ है। इस नाटक के समकालीन परिवेश में आज के बुद्धि वर्ग के परेशानी और उनके भावात्मक जीवन की असहाय पीड़ा है। पूरे नाटक में सम्बन्धों का विघटन और जुड़े रहने की छट-पटाहट, आर्थिक विवशता और दोहरेपन, विलगाव और खण्डित होने की प्रक्रिया के साथ-साथ नए मूल्यों की खोज आधुनिकता के सन्दर्भ में व्यक्त हुई है। नाटक में आधुनिकता का बोध उस स्तर पर भी होता है जब बड़ी लड़की अपनी इच्छानुसार घर से भागकर अपने प्रेमी से शादी करती है। शादी के बाद उसे अपने नए घर में भी सब कुछ गलत लगता है। इसका कारण 'हवा' को बताया गया है जो बड़ी लड़की और मनोज के बीच से गुजर कर अर्थात दोनों में बेचैनी पैदा कर गई है। यह आधुनिक युग की अर्थलिप्सा, ऊँची महत्वाकांक्षाओं की एक 'हवा' ही है। सम्पूर्ण नाटक में पुरुष दो और स्त्री के संवादों से भी आधुनिकता का बोध होता है। पुरुष की बातों से उसकी भोगलिप्सा, कामुकता आदि बुरी

प्रवृत्तियों का प्रकटन जो कि आज के युग के अधिकारी वर्ग की संकीर्ण एवं लोलुप दृष्टि की परिचायक है । यहाँ पर पुरुष दो सावित्री के घर पर आकर फिर वापस जाते कामुकता का प्रदर्शन करते हुए कहता है कि -

"पुरुष दोः अच्छा-अच्छा... हाँ !... ठीक है... देखूँगा मैं । (घड़ी देखकर) अब चलना चाहिए ।

बहुत समय हो गया । (उठता हुआ) तुम घर पर आओ किसी दिन । बहुत दिनों से नहीं आयीं।

स्त्री और बड़ी लड़की साथ ही उठ खड़ी होती है ।

स्त्री : मैं भी सोच रही थी आने के लिए । बेबी से मिलने ।

पुरुष दो : वह पूछती रहती है, आंटी इतने दिनों से क्यों नहीं आयीं? बहुत प्यार करती है अपनी आंटियों से । माँ के न होने से बेचारी...।"

इस आधुनिक युग में हर परिवार को सुचारु रूप से चलाने के लिए नारी का योगदान यहाँ पर महत्वपूर्ण होता है । नारी त्याग, ममता, स्नेह, वात्सल्य के रूप से अपने परिवार रूपी वृक्ष को सींचती है । प्राचीन काल में नारी का कार्यक्षेत्र केवल घर की चार दीवारी तक ही सीमित था । परंतु आधुनिक युग में नारी ने शिक्षा पाकर अपने कार्यक्षेत्र के दायरे को ओर व्यापक बना दिया है । वह रूढ़िवादी एवं परंपरावादी परिवेश से मुक्त होकर आधुनिक चेतना पाकर एक ऐसी विचारधारा की ओर उन्मुख हुई जो पूर्व स्थिति से भिन्न रही है । आधुनिकता की इस नई चेतना ने ही उसके समक्ष कुछ असंगतियों को जन्म दिया जो बाद में समस्या बन गई । अर्थात यह नाटक नारी की समस्याओं को उजागर करता है । नाटक में यह जवान बच्चों की एक ऐसी माँ की कथा है जिसको उसकी खोखली महत्त्वाकांक्षा के असन्तोष, आक्रोश, असबद्धता, अजनबीपन और अकेलेपन की मनहूसियत ने चारों ओर से घेर रखा है । जीवन के प्रति उसकी असंतुष्टि ही अतृप्ति का कारण है ।

'आधे-अधूरे' की नायिका सावित्री समर्पणशीला, कर्त्तव्यवेदी पर मर मिटने वाली नारी नहीं है। वह व्यक्तिगत सुख को महत्त्व देती है । महेन्द्रनाथ से विवाह करके वह यह अपेक्षा रखती है कि पति उसके अधूरेपन को पूर्णता प्रदान करें, इसके लिए जरूरी है कि पति पूर्ण हो । पुरुष चार अर्थात जुनेजा जब सावित्री को धिक्कारता है और कहता है कि महेन्द्रनाथ में हीन की भावना आ गई है, उसके लिए सावित्री जिम्मेंदार है, महेन्द्रनाथ की बीमारी के लिए भी वहीं जिम्मेंदार है । तब सावित्री भड़क जाती है और कहती है कि "यूँ तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता-फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है - पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो?" इस तरह से सावित्री महेन्द्रनाथ को लेकर अपने गुस्से को निकालती हुई दिखाई देती है ।

सावित्री एक पूरे आदमी की तलाश में पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष तीन और पुरुष चार को आजमा चुकी है । कुछ और नामांकन का संकेत नाटक में दिया गया है, उनको भी सावित्री आजमा चुकी है । इन सबको उसने आधा-अधूरा ही पाया है, एक-सा पाया है । सावित्री का कथन है कि "सब-के-सब... सब-के-सब... एक-से ! बिलकुल एक-से हैं आप लोग ! अलग-

अलग मुखौटे, पर चेहरा? – चेहरा सबका एक ही !" इस संदर्भ में पुरुष चार कहता हैं कि "तुम चुनाव कर सकती हो। लेकिन दायें से हटाकर बायें, सामने से हटाकर पीछे, इस कोने से हटाकर उस कोने में – क्या सचमुच कहीं कोई चुनाव नज़र आया है तुम्हें?" पुरुष चार के इस जवाब में आधुनिकता का बोध गहराने लगता है। जुनेजा सारी स्थिति का जायजा लेने के बाद कहता है, इसकी जगह आज अगर जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत या कोई ओर भी होता तब भी वह इतनी ही असन्तुष्ट इतनी ही अपूर्ण रहती जितनी अब है। क्योंकि उसने जीवन को किन्हीं निश्चित अर्थों से जीने की दृष्टि नहीं पाई है। वह कहता है कि उसके लिए जीने का मतलब है, "कितना-कुछ एक साथ होकर, कितना-कुछ एक साथ पाकर, कितना-कुछ एक साथ ओढकर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, और इसलिए जिस-किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती।" इस तरह नाटककार ने जुनेज़ा के इस कथन से स्पष्ट किया है कि आधुनिकता के नाम पर आज की नारी अपने परम्परागत रूप से त्यागकर अपनी बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं के लिए अपने 'व्यक्तित्व' के ह्रास एवं पारिवारिक विघटन का कारण बनती हैं।

आधुनिक युग में नारी घरेलू दाम्पत्य जीवन की जिम्मेवारी के साथ-साथ नौकरी करके अर्थोपार्जन भी कर रही है। इस दोहरे दायित्व के निर्वाह में वह अपने मशीनीकरण का विद्रोह भी करती है। नाटक में महेन्द्रनाथ घर पर बैठे रहने से सावित्री अपने परिवार का भरण-पोषण करने से लिए नौकरी करती है तथा घर आने पर सारे सामान को अव्यवस्थित देखकर क्षुब्ध भी हो जाती है। वह कहती है, "यहाँ सब लोग समझते क्या है, मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती है? मगर किसी के मन में जरा-सा भी खयाल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं..।" जो स्त्री माँ बनकर, पत्नी बनकर, गृहस्थी का 'घर' बनाए रखती है, उसे यदि सारे सदस्य मशीन समझें तो आधुनिक परिवेश की नारी विद्रोह भी करती है।

महेन्द्रनाथ का बिखरा हुआ व्यक्तित्व आज के मानव के व्यक्तित्व का बोध कराता है। व्यापार में घाटा खाया हुआ, वह एक बेकार फालतू पति बनकर रह गया है। अब उसे पत्नी की जली-कटी सुननी पडती है, जिससें उसका स्वाभिमान चाहत होता है। अपनी निरर्थकता, अपनी अस्मिता का ज्ञान जागता है, क्योंकि इस घर में उसे कोई कुछ नहीं समझता। "मैं इस घर में एक रबड़-स्टैम भी नहीं, सिर्फ़ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ - बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा।" इस तरह से उसे दुत्कार, अनादर और अपमान सहना पड़ता है। वह फालतू आदमी है। यह व्यक्तित्व के विघटन और अस्मिता का प्रश्न आधुनिक स्थितियों में अस्तित्ववाद के कुछ पहलुओं को प्रकाशित करता है। लड़के और लड़की बिन्नी की बातों से भी बहुत बार अस्वीकार और खीझ के माध्यम से आधुनिकता का बोध उजागर होता है। यहाँ पर लड़का अशोक माँ से कहता है कि "बुलाती ही क्यों हो ऐसे लोगों को जिनके आने से...? हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।" परोक्ष रूप से इस बात की पुष्टि करता है कि आधुनिक युग में व्यक्ति के व्यक्तित्व का अस्तित्व रहना जरूरी है अन्यथा उसमें व्यर्थता का एहसास होने लगता है, यही व्यर्थता का एहसास आधुनिकता की एक प्रवृत्ति है और नाटक के अन्तिम पन्नों पर बिन्नी के ये शब्द कि 'मिट्टी के लोदें' सबके सब 'मिट्टी के लोदें' एब्सर्ड नाट्य परम्परा के आधुनिक भाव बोधों जैसे लगते हैं।

नाटक में बड़ी लड़की का घर से भाग जाना, परन्तु वहीं पर चैन न मिलना आधुनिक यान्त्रिक जीवन की व्यापक बेचैनी का सूचक है। इसने खुद, अपना पति अपने-आप चुना है, फिर भी वह खुश नहीं है। वह शादी से पहले समझती थी कि मनोज को उसने जान लिया है, परन्तु अब वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था। उसका यह कथन है कि "दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहे, एक हम में साँस ले उतना ही ज्यादा एक-दूसरे से अपने आपको अजनबी महसूस करे।" यहाँ पर एलियेनेशन, कटाव की स्थिति को उभारता है, जो आज के जीवन में घर कर गई है। आज हर व्यक्ति एक-दूसरे से तो क्या खुद से भी अजनबीपन महसूस करता है। यह अपने-आपको परिवेश, घर-परिवार सबसे कटा हुआ महसूस करता है। इस टूटते-बिखरते परिवेश में आधुनिकता का बोध मानव की नियति के स्तर पर नहीं है, जितना उसकी स्थिति के स्तर पर है और इतना-जितना इसलिए कि एक स्तर को दूसरे स्तर से अलग नहीं किया जा सकता। यहाँ घर पर भी 'अलगाव और अजनबीपन' की स्थिति को दर्शाया है।

'आधे-अधूरे' नाटक में आधुनिक महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन का विराट अंकन है। उसमें आत्म-जिज्ञासा, आत्म-सन्तुष्टि, व्यक्तिगत ईमानदारी, विश्लेषनात्मक दृष्टि, जीवन ढोने का अवसाद एवं क्लान्ति, जीवनचर्या में अवकाश की कमी को दर्शाया गया है। यह सब आधुनिकता की विशिष्ट पहचान हैं। 'आधे-अधूरे' नाटक का प्रत्येक पात्र इन विशेषताओं से भरा हुआ है। आधुनिकता व्यक्तित्व के स्वतन्त्र अस्तित्व में विश्वास रखती है। नाटक के परिवार के सभी पात्र अपने-अपने मन में अपनी-अपनी एक प्रतिमा बनाए बैठे हैं, जिसको वे किसी दूसरे की मानसिक प्रतिमा के लिए समर्पित नहीं कर सकते। प्रत्येक पात्र के लिए निजी इच्छा, निजी जीवन दृष्टि, निजी धारणाएँ, निजी जीवन मूल्य सबसे बढ़कर है। वैवाहिक जीवन की मध्यवर्गीय विडम्बनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक सदस्य एवं व्यक्ति आधा-अधूरा रहकर अपने-अपने ढंग का संत्रास भोगता है। प्रत्येक पात्र की नियति वृत्तात्मक है। सभी लोग पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण से निकट दूर आते हुए बाहर जाकर भी वापस लौटने की नियति से बाध्य हैं।

प्रस्तुत कृति में समकालीन जीवन की समस्त व्यक्तिगत विसंगतियाँ संवेदना के स्तर पर जीवित और अभिव्यक्त होती है। यहाँ पर यह मुख्य है कि एक परिवार को आधार बनाकर जीवन में तनाव की स्थिति को रेखांकित करना और यह दिखाना है कि आज का हर व्यक्ति किस प्रकार से विभिन्न स्तर पर तनाव झेलने के लिए विवश है। नाटक में इसका जिक्र मिलता हैं। इसीलिए ओम शिवपुरी ने 'आधे-अधूरे' नाटक को "समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक नाटक" माना है।

अतः यह कहा जा सकता है कि 'आधे-अधूरे' नाटक की स्थितियों द्वारा नाटककार ने अपने जमाने की सही नब्ज पर अँगुली रखी है जो सामयिक परिवेश में आधुनिकबोध को परखने में सक्षम है।

७.३.२ 'आधे – अधूरे' में युग बोध :

'आधे-अधूरे' नाटक में युग बोध की दृष्टि से विचार करेंगे तो यह स्पष्ट किया गया है कि मानव स्वयं को परिस्थितियों में जकड़ा हुआ पाता है। उसका सम्बन्ध समाज तथा बाहरी जीवन से कट जाता है या शिथिल पड़ जाता है। अपने इस यथार्थ में उसको अनेक स्वरूपों में

प्रस्तुत होना अनिवार्य हो गया है। वह कभी विद्राही है, तो कभी मात्र निषेधात्मक चीत्कार या आक्रोश है, कभी अजनबीपन का भटकाव है तो कभी सचेत सक्रिय एवं ठोस यथार्थ की पहचान है, कभी वर्जनाओं से प्राप्त असहनीय नैराश्य में भटकाव की असीमता एवं निरर्थकता को ढोने वाला अभिशाप है। यह पूरा नाटक अपने परिवेश की उपज है।

नाटक का पात्र एवं नायक महेन्द्रनाथ एक निकम्मे और नकारा हुआ आत्मविश्वासहीन पुरुष है। जो अपने नकारेपन के एहसास से छटपटाता हुआ दिखाई देता हैं। इस नाटक में एक स्त्री पात्र सावित्री को दर्शाया गया है। महेन्द्रनाथ अर्थात सावित्री का पति आर्थिक रूप से अपनी स्त्री की कमाई पर आश्रित रहने के कारण दयनीय स्थिति में जीवनयापन कर रहा है। अपने इस निकम्मे पति के प्रति खीझ से भरी घर की टूटती-बिखरती जिन्दगी से ऊब कर यह स्त्री एक 'पूरे आदमी' की तलाश में इधर-उधर भागती हुई दिखाई देती है। स्त्री अर्थात सावित्री पूरे आदमी के बारे में कहती है "असल आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी शख्सियत हो?" इसी मादे और शख्सियतवाले आदमी की तलाश में वह अपुरे पुरुषों से टकराकर लौटती है और अपनी खीझ में चीखती चिल्लाती हुई, उसी आदमी के साथ अपनी जिंदगी जीने के लिए मजबूर होती है। घर में रोज-रोज की यह चीख कहीं-ना-कहीं घर की बड़ी लड़की, लडका और छोटी लडकी पर अपना दबाव डालती हुई दिखाई देती है। और माँ के प्रेमी के साथ ही बड़ी लड़की भाग जाती है। छोटी लड़की तेरह वर्ष की अवस्था में ही उद्धत, अशिष्ट और विद्रोह के रूप में प्रस्तुत होती है। इसलिए इस नाटक की कहानी जितनी सीधी लग रही है परन्तु इसमें रोजमर्रा के दिखाई देने वाले पात्रों के माध्यम से मध्य वित्तीय परिवार की टूटती हुई कड़ियाँ और ढहते हुए मूल्यों का खाका पेश किया गया है। इसे महज एक साधारण परिवार की या मध्यवर्गीय परिवार की त्रासदी कहकर टाला जा सकना सम्भव नहीं है। यह एक आईना है जो अपने-आपसे अपने आस-पास के जीवन से साक्षात्कार कराता है। अंत में महेन्द्रनाथ कहता है कि 'मैं भी किसी-न-किसी अंश में या रूप में आपमें से हर एक व्यक्ति हूँ।'

स्वंतंत्रता के पहले स्त्रियों में बदलाव नहीं था परंतु आजादी के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में सबसे भारी बदलाव स्त्रियों की हैसियत में दिखाई देता है। यह परिवर्तन देश का सबसे बड़ा वर्ग यानी मध्यमवर्ग में ज्यादा दिखाई देता है। 'आधे अधूरे' नाटक में सावित्री नौकरी करके अपने परिवार को पुरुष की तरह चलाने लगती है । वह आधुनिक महत्त्वाकांक्षिणी नारी है इसलिए सभी भौतिक सुख-सुविधाओं का उपयोग करना चाहती है। परंतु यहाँ पर सावित्री का पति महेन्द्रनाथ इच्छाओं की पूर्ति करने में असमर्थ है इसलिए वह स्वयं घर से बाहर निकल पड़ती है। घर को चलाने के लिए नौकरी करती है और घर से बाहर की दुनिया से परिचित होने के उपरान्त विपक्षगामी हो जाती है। उसे लगता है कि उसका पति आधा-अधूरा है इसलिए वह अपने अधूरेपन को पूर्ण करने के प्रयत्न में अन्य लोगों के अर्थात बाहरी दुनिया के संपर्क में आती है। अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह धन और वैभव के पीछे भागती है। सावित्री व्यक्ति को नहीं, पद, वैभव और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहती है। यह धन की लालसा एक अच्छे-खासे परिवार को दीमक की तरह चाट जाती है। उनकी बड़ी बेटी, लड़का और छोटी लड़की आदि सभी सदस्य वर्तमान युग के प्रभाव से युक्त दिखाई देते हैं जिसमें मनुष्य अपने 'स्व' और आत्मकेन्द्रित सोच के कारण अजनबीपन, घुटन, कुण्ठा, संत्रास आदि से पीड़ित है। यहाँ

पर नाटककार मोहन राकेश ने आधुनिक युग की युवा पीढ़ी का चित्रण युग बोध के माध्यम से किया है।

नाटक में बड़ी लड़की बिन्नी और लड़का अशोक माता-पिता के संबंधो को अपने आँखों से देख लेते है। घर के फूहड़ वातावरण से बड़ी लड़की बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। परंतु माता-पिता के संस्कारों के कारण ही उसका वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं है। दूसरी तरफ़ लड़का अशोक सारा दिन अभिनेत्रियों की अश्लील तस्वीरें काटता रहता है और वर्णा उद्योग सेंटर वाली के पीछे जूतियाँ चटखता रहता है। छोटी लड़की किन्नी अपनी उम्र से अधिक परिपक्व हो गई है और यौन सम्बन्धों में रस लेने लगती है। अंत में किन्नी घर के सभी सदस्यों को 'मिट्टी का लौंदा' कहती है। इसके साथ-साथ आधुनिक युग की पूँजीवादी व्यवस्था में पिसते निम्न मध्यम वित्तीय परिवार की अर्थाभाव की समस्या को भी नाटककार ने इस परिवार के माध्यम से चित्रित किया है।

प्रस्तुत नाटक में महेन्द्रनाथ-सावित्री का यह परिवार पूर्व में अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध परिवार था परंतु व्यापार के क्षेत्र में यश न मिलने के कारण और अपेक्षा से अधिक ऊल-जलूल खर्चों के कारण अब आर्थिक संकट की दलदल में फँसा हुआ है। लेकिन नायिका सावित्री अपनी इच्छाओं के अनुसार परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए, परिवार के स्तर को विकसित करने के लिए कई अमीर पुरुषों से सम्पर्क बनाती है। एक तरफ सावित्री अपनी इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करती है और दूसरी तरफ से परिवार के लिए अर्थाजन। इस नाटक में महानगरीय परिवेश की सफल अभिव्यक्ति को भी प्रस्तुत किया है। माता-पिता के प्रति आदर-श्रद्धा का अभाव, पारिवारिक विघटन-टूटन-कुण्ठा आदि को उजागर करता यह नाटक सामाजिक दशाओं का दस्तावेज बन गया है। नाटककार मोहन राकेश 'आधे-अधूरे' में आधुनिक युग में प्रचलित प्रेम-विवाह की समस्या को भी उजागर करना चाहता है। महेन्द्रनाथ-सावित्री, बिन्नी-मनोज के माध्यम से नाटककार प्रेम-विवाह की असफलता की ओर इशारा भी करते हैं। विवाह से पूर्व सावित्री के जुनेजा, जगमोहन आदि से सम्बन्ध थे लेकिन बाद में महेन्द्रनाथ का प्रेम-व्यापार विवाह में परिणत हो गया लेकिन उनका यह प्रेम-विवाह सफलता के सोपानों पर चढ़ नहीं सका। वैसे बड़ी लड़की बिन्नी का भी हुआ।

अतः में यही कहा जा सकता है कि 'आधे-अधूरे' नाटक के माध्यम से नाटककार मोहन राकेश ने आज के युग बोध को ही उजागर करने का प्रयास किया है।

७.३.३. 'आधे-अधूरे' का परिवेश :

साहित्यकार एवं नाटककार किसी भी विधा का लेखन कार्य करते समय अपने-अपने परिवेश से प्रभावित होता है। विशेषतः अपने युग के वातावरण, घटनाओं एवं समस्याओं को देख-परखकर युग के लेखा-जोखा को प्रस्तुत करता है। यहाँ पर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिस्थिति भी साहित्यकार की संवेदना के निर्माण, परिवर्तन एवं गति की सूचक होती है। नाटक में मोहन राकेश ने अपने कालीन परिवेश में विभिन्न परिस्थितियों के उलटफेर, बदलते जीवन मूल्यों और वर्तमान जीवन की जटिल स्थितियों की युग-पृष्ठभूमि बनकर साहित्य में अवतरित हुई है। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' आदि अर्द्ध ऐतिहासिक नाटकों की रचना करने के बाद अपने परिवेश से प्रभावित

होकर विभिन्न विसंगतियों के चक्रव्यूह को तोड़ने का प्रयास इस 'आधे-अधूरे' नाटक के माध्यम से किया है । अतः मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाट्य साहित्य पर इन युगीन परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है । 'आधे-अधूरे' नाटक का सृजन स्रोत भी उनका युग परिवेश एवं निजी जीवन ही है। परंतु चिरन्तन काल से ही मानव परिस्थितियों से लढता हुआ दिखाई देता है । आज की यान्त्रिक मानसिकता, भीतर-बाहर के दबावों, आर्थिक वैषम्यों एवं यौनाचारों की स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति ने परिवर्तन ला सकने की क्षमता पर एक प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है । आज का मानव अपने में ही आधे-अधूरेपन से संत्रस्त, अपने में ही दब-घुटकर उन्हीं परिस्थितियों में बने रहने के लिए विवश हो जाता है। तभी तो यह वितृष्णा से भरकर भी, बार-बार नये अर्थ के लिए जाकर भी जहाँ से शुरुआत करता है, वहीं लौट आने के लिए विवश हो जाता है।

मोहन राकेश ने अर्थतंत्र पर स्त्री का एकाधिकार होने तथा पुरुष की बेकारी के कारण 'आधे-अधूरे' में एक सामान्य नहीं, विशिष्ट परिवार की कहानी बनाई है। इसमें केवल एक औरत - मर्द की व्यक्तिगत त्रासदी नहीं है। बल्कि यहाँ पर एक विशेष मध्यमवर्गीय परिवार की केवल आर्थिक स्थितियाँ ही भिन्न होतीं है, इसलिए यहाँ पर बहुत ही मामूली-सा असर रह जाता है । इस नाटक में सावित्री और महेंद्रनाथ के अलावा उनकी बड़ी लड़की बिन्नी, लड़का अशोक, छोटी लड़की किन्नी के साथ-साथ जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन, मनोज और सिंघानिया का भी उल्लेख हुआ है । यहाँ पर महेंद्रनाथ ही प्रतिरूप नहीं हैं और न ही नाटककार ऐसा मानता है। इनकी सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्थिति एवं बनावट में काफी अंतर है। महेंद्रनाथ से लेकर जुनेजा तक इस नाटक में निम्न, मध्य, उच्च-मध्यवर्ग के तीनों स्तर एक साथ मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त बिन्नी और मनोज के प्रेम संबंध, अशोक और वर्णा के प्रेम संबंधों का संकेत, किन्नी और सुरेखा की औरत-मर्द के रिश्तों की बातचीत तथा सुरेखा के माँ-बाप के विवाहेत्तर संबंधों का संदर्भ भी इस परिवेश को व्यापक एवं प्रामाणिक बनाते हैं।

आर्थिक दृष्टि से बिन्नी और मनोज का वैवाहिक जीवन तो हर लिहाज़ से अच्छा है। फिर भी पति-पत्नी संबंधों को लेकर उनमें तनाव, घुटन, संघर्ष और बिखराव क्यों है? स्पष्ट है कि आज के मध्यवर्गीय जीवन-परिवेश में पति-पत्नी के अलगाव और परिवार के विघटन का एकमात्र कारण आर्थिक संकट ही नहीं है । यह एक पेचीदा और बारीक समस्या है और इसके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनेक कारण हैं। इसीलिए मोहन राकेश ने उसे अव्यक्त और अस्पष्ट 'हवा' कहा है और उसे सरलीकृत करने का प्रयत्न नहीं किया है। उन्होंने इस आधुनिकता में केवल मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन में स्त्री और पुरुष के संबंधो को चुना है। इसीलिए यहाँ पर मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक में मध्यवर्गीय परिवार के परिवेश को यथासंभव सम्पूर्णता और जटिलता के साथ प्रस्तुतीकरण करने का प्रयास किया है।

७.४ सारांश

सारांशतः यह कह सकते है कि 'आधे-अधूरे' नाटक में हमें एक टूटता हुआ परिवार, एक मध्यवित्तीय से निम्न मध्यवित्तीय घर, तनाव, विवशता और लाचारी का दर्शन हो जीता है। पति-पत्नी का विवाहोपरान्त कुछ सालों में ही ऊबकर एक-दूसरे से छुटकारा पाने की कोशिश, उनके बातों-बातों में व्यंग्य और विक्षोभ, विवाह की अनावश्यक आवश्यकता और

गलत चुनाव, यह सब उस युगीन विडम्बना को उभारते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् मध्यवर्ग में आर्थिक विषमताओं ने क्रमशः पारिवारिक बिखराव, मानसिक तनाव और नैतिक पतन को बढ़ावा दिया है। नाटककार मोहन राकेश ने इस नाटक में आज की संत्रासपूर्ण परिस्थितियों की कटु सम्भावनाओं का यहाँ संकेत दिया है।

७.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक में आधुनिकता के दर्शन को किस तरह से चित्रित किया है, विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

२. 'आधे-अधूरे' नाटक में युग बोध की समीक्षात्मक चर्चा कीजिए।

३. मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक में परिवार को महत्व दिया है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

४. मोहन राकेश ने आधे-अधूरे नाटक में स्त्री की दशा को प्रस्तुत किया है, उस पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

५. मध्यवर्गीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में 'आधे-अधूरे' का विवेचन कीजिए।

७.६ संदर्भ ग्रंथ

१. आधे-अधूरे – मोहन राकेश

२. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक – संपा. नैमिचंद्र जैन

३. आधुनिक हिंदी नाटक – गिरीश रस्तोगी

४. हिंदी नाटक कल और आज – केदार सिंह

सूचना :

पाठ्यक्रम के अनुसार आधे अधूरे नाटक में विमर्श का अध्ययन करना है | इस आधार पर अध्ययन सामग्री में तीन मुद्दों का अध्ययन हमने किया है जो इस प्रकार है – आधे अधूरे नाटक में युग बोध, आधे अधूरे नाटक में आधुनिकता, आधे अधूरे नाटक का परिवेश | इन मुद्दों के अलावा भी विमर्श के अंतर्गत अन्य कई विषयों पर आधे अधूरे नाटक का अध्ययन किया जा सकता है | जैसे – आधे अधूरे नाटक में मनोवैज्ञानिकता, आधे अधूरे नाटक में मध्यम वर्गीय परिवार का चित्रण, 'आधे-अधूरे' नाटक में स्त्री-पुरुष के संबध या दाम्पत्य जीवन, 'आधे-अधूरे' नाटक में प्रस्तुत सामाजिक यथार्थ आदि विषयों का अध्ययन इकाई पाँच और छह के अध्ययन के आधार पर कर सकते है | इन दो इकाइयों में नाटक के तत्वों के आधार पर आधे अधूरे नाटक का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है | इसके अतिरिक्त मूल नाटक भी पढना अनिवार्य है | अतः इन विषयों से सम्बन्धित प्रश्न परीक्षा में पूछे जा सकते है|

*****